पदचिन्ह

ISSN 2231-1351
PADCHINHA

जून २०११
वर्ष ०१ अंक ५

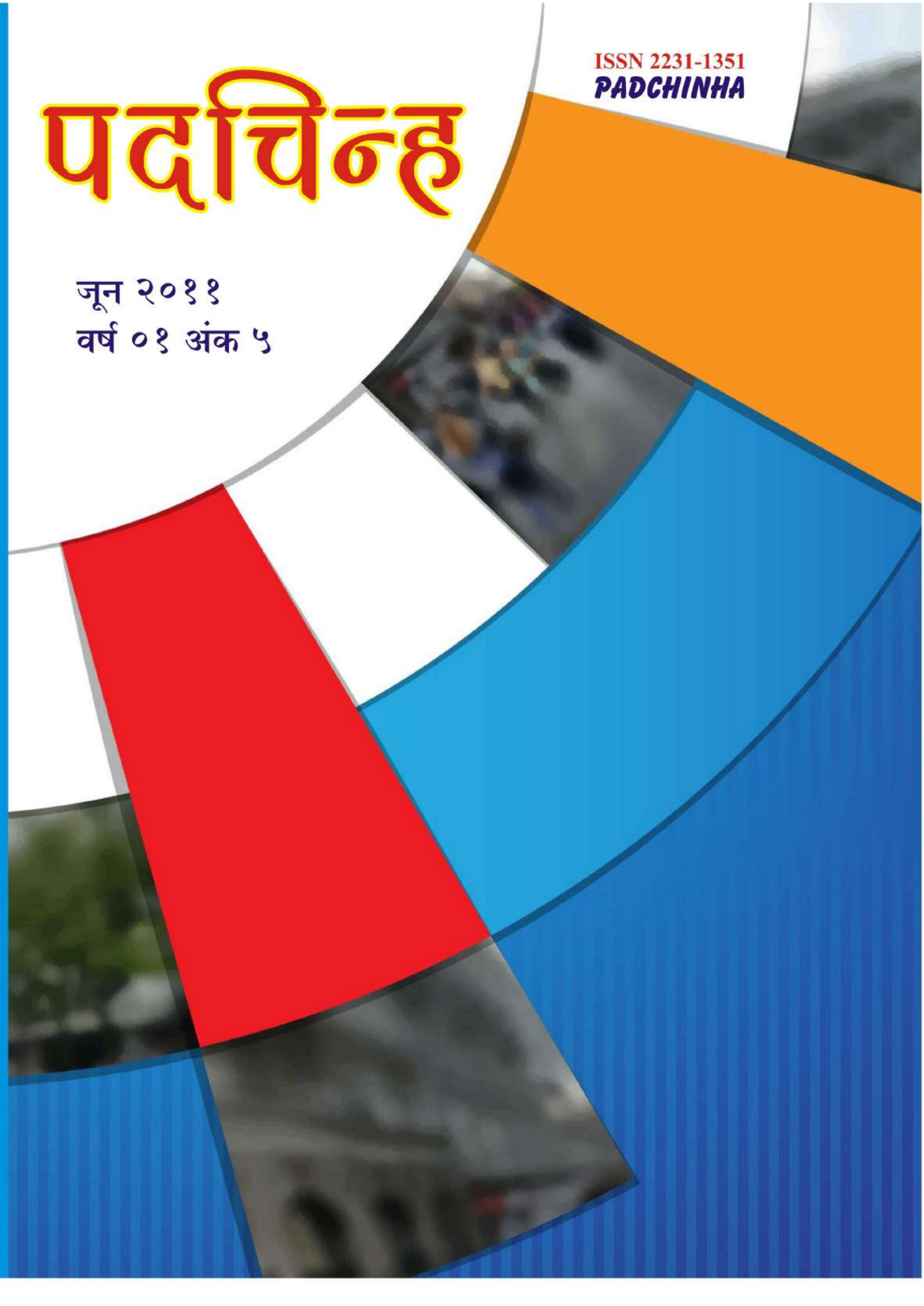

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

पदचिन्ह

PADCHINHA

जून, 2011 वर्ष 1 अंक 5

संपादक

अजय परमार

B-30/239 नगवां, लंका, वाराणसी-221005

padchinhahindi@gmail.com

सह-संपादक

पंकज कुमार सिंह

पचपोखरी, रोहतास (सासाराम)
पिन- 802217

gandhikhadi@gmail.com

© पदचिन्ह में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित। संपादक : अजय परमार

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

पदचिन्ह जून, 2011 वर्ष 1 अंक 5

अनुक्रम

	भारत का संविधान _उद्देशिका	**पृष्ठ सं.**
1.	भारत की एकता और अखंडता में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की भूमिका **_सौरभ मालवीय**	04-09
2.	रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में ज्ञान-निरूपण, शिक्षा की अवधारणा एवं शिक्षण अधिगम व्यवस्था **_परमानन्द त्रिपाठी**	10-16
3.	देशभक्ति प्रधान हिन्दी फिल्में और भारतीय समाज **_आदित्य कुमार मिश्रा**	17-20
4.	महात्मा गाँधी और राष्ट्रवाद चंपारण आंदोलन के विशेष संदर्भ में **_सौरभ मालवीय**	21-26
5.	हिन्दी सिनेमा में किसानों का चित्रण 'धरती के लाल' फिल्म के संदर्भ में **_विंध्यलक्ष्मी पाण्डेय**	27-30
6.	भारतीय सिनेमा में गाँधी विचार 'भक्त विदुर' और 'दो आंखें बारह हाथ' फिल्मों के संदर्भ में **_पंकज कुमार सिंह**	31-33

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब** में व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

भारत की एकता और अखंडता में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की भूमिका

सौरभ मालवीय*

शोध सारांश-

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भारत में काफी चर्चित और लोकप्रिय अवधारणा है। इस अवधारणा की चर्चा करने पर यह तथ्य सामने आता है कि अनेकता में एकता भारत की पहचान है। भिन्न-भिन्न जाति-धर्म, क्षेत्र, भाषा, रंग-रूप और विचारधारा के होने के बावजूद यहां के निवासी आपस में मिल-जुलकर रहते हैं। तमाम विविधताओं और असहमतियों के बावजूद सह-अस्तित्व की भावना ही भारत की एकता और अखंडता का मूल मंत्र है। इस मूल मंत्र को भारत की संस्कृति कहते हैं और यह संस्कृति ही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आधार है। भारत की मूल संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयास अनेक विदेशी आक्रांताओं ने किया लेकिन अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण भारतवासी सदैव अपनी संस्कृति को बचाते रहे, संघर्ष और उस पर गर्व करते रहे। कभी मुगलों ने कभी अंग्रेजों ने भारत पर शासन किया, लेकिन वे भारतीयों की संस्कृति को और उसके अस्तित्व को मिटाने में सदैव असफल रहे। यह शोध पत्र भारत की एकता और अखंडता में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की भूमिका को रेखांकित करता है।

संकेत शब्द : देश, संस्कृति, भारत, राष्ट्र, राष्ट्रवाद, विविधता, एकता, अखंडता, विकास।

प्रस्तावना:

किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व, उसका विकास और पहचान उसके नागरिकों की सोच पर निर्भर करता है। नागरिकों की सोच राष्ट्र की संस्कृति पर निर्भर करता है। संस्कृति स्थायी नहीं होती, बल्कि समय-समय पर इसमें परिवर्तन संभव है। संस्कृति का उत्थान और पतन राष्ट्र के उत्थान-पतन के लिए उत्तरदायी होता है। भौतिकवादी युग में नागरिकों की सोच असिमित उपभोग पर केंद्रित है या संयमित आचरण पर यह उसकी संस्कृति के साथ-साथ नागरिकों के संगत पर भी निर्भर करता है। जैसे-जैसे दुनिया में शिक्षा को बढ़ावा मिला, यातायात एवं सूचना एवं संचार के साधनों में वृद्धि हुई, तकनीकी सस्ती हुई, सर्वसुलभ हुई, वैसे-वैसे लोगों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आवागमन बढ़ा, मेल-जोल बढ़ा, संवाद बढ़ा और विचारों का आदान-प्रदान बढ़ा, लोगों की सोच बदली। एक ओर लोगों के खान-पान में बदलाव आया, पहनावे में बदलाव आया, बोल-चाल

* शोधार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

में बदलाव आया। समय के साथ बहुत कुछ बदला लेकिन कुछ स्थायी है, कुछ अपरिवर्तित है तो वह है भारतवासियों का मूल चरित्र यानी भारत की संस्कृति। भारत के संदर्भ में मशहूर शायर मुहम्मद इकबाल ने लिखा है- "कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन, दौर-ए-ज़माँ हमारा"। मुहम्मद इकबाल के शब्दों में कहें तो यह 'कुछ बात' ही भारत को विशेष बनाती है। यह भारत की संस्कृति ही है जिसे मुहम्मद इकबाल 'कुछ बात' लिख रहे हैं जिसके धरातल पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद खड़ा है। इस शोध पत्र में भारत की एकता और अखंडता के संदर्भ भारत की सांस्कृतिक विशेषताओं और गौरवशाली विरासत से युक्त सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अध्ययन किया गया है।

शोध समस्या-

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक विशिष्ट अवधारणा है और राष्ट्र के उत्थान में इसकी अनन्य भूमिका है तथापि कभी वैचारिक भिन्नता के कारण तो विशेष उद्देश्यों के कारण इसके अर्थ को स्पष्ट रूप से व्याख्यायित नहीं किया जाता बल्कि कुतर्कों के सहारे बहस छेड़ा जाता है। भारत की एकता और अखंडता को ध्यान में रखकर इस जरूरी विषय पर शोध और अध्ययन ही इस समस्या से निजात दिला सकता है।

शोध का उद्देश्य -

1. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अध्ययन एवं विवेचन करना।
2. भारत की एकता और अखंडता में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की भूमिका को रेखांकित करना।

उपकल्पना-

1- सांस्कृतिक राष्ट्रवाद नागरिकों को उनकी संस्कृति, विरासत और गौरव की चेतना जागृत करता है।
2- सांस्कृतिक राष्ट्रवाद नागरिकों में आपसी प्रेम, राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बढ़ावा देता है।

शोध प्रविधि-

इस शोध पत्र में अंतर्वस्तु विश्लेषण पद्धति का प्रयोग किया गया है।

शोध विषय संबंधी महत्वपूर्ण तथ्य एवं विश्लेषण:

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक ऐसी अवधारणा है जो किसी देश की भौगोलिक सीमा से बंधी नहीं होती है बल्कि यह संस्कृति प्रधान होती है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आधार यहां की प्राचीन संस्कृति है, जो सदियों से यहां के निवासियों के जीवनचर्या में शामिल रही है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को समझने से पहले राष्ट्र और देश की चर्चा आवश्यक है। आमतौर पर देश और राष्ट्र को एक-दूसरे का पर्यायवाची माना जाता है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। देश और राष्ट्र दोनों भिन्न-भिन्न होते हैं। देश की सीमा रेखा होती हैं। देश की

एक अर्थव्यवस्था होती है, देश में शासक होता है। देश की अपनी एक छवि होती है, उसकी सुरक्षा के लिए सैन्यकर्मी होते हैं लेकिन राष्ट्र इससे भिन्न है। "प्राकृतिक विशेषता और भिन्नता देश को संसार से अलग और स्पष्ट करती है और उसके निवासियों को एक विशेष बंधन-किसी सादृश्य के बंधन-से बांधती है।"[1] राष्ट्र एक अवधारणा है, राष्ट्र की कोई भौतिक सीमा नहीं होती है। जिस प्रकार राष्ट्र की कोई भौतिक सीमा नहीं होती, उसी प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद किसी भौतिक क्षेत्र विशेष की बात नहीं करता। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संस्कृति से संचालित अवधारणा की बात करता है। भारत की संस्कृति विश्व बंधुत्व की है। हम सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना से संचालित होते हैं। यह संस्कृत भाषा में लिखा गया एक ऐसा आदर्श वाक्य है, जिसका अभिप्राय है, "सभी लोग सुखी हों।" यह वाक्य सम्पूर्ण समाज की भलाई और सुख-शांति की कामना के लिये प्रयोग होता है। यह भारत की संस्कृति में सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए काफी महत्वपूर्ण है। यह हमें इस बात के लिए प्रेरित करता है कि हमें न केवल अपने भले के लिए बल्कि अपने समुदाय और समाज की भलाई के लिए काम करना चाहिए। यह भावना आपसी सहयोग, भाईचारे और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है, जो मानवता, सामाजिक समरसता, और सभी की खुशी को रेखांकित करता है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारत की एकता-अंखंडता:

किसी भी राष्ट्र की एकता और अखंडता में नागरिकों की सोच काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस संदर्भ में वैचारिक समानता और वैचारिक भिन्नता दोनों ही तथ्य काफी महत्वपूर्ण हैं। वैचारिक समानता और वैचारिक भिन्नता दोनों के साथ सह अस्तित्व की विशेषता का होना आवश्यक है। वैचारिक समानता होने पर किसी एक विषय पर साथ-साथ आगे बढ़ना आसान हो जाता है लेकिन यह विचार एकतरफा भी हो सकता है जबकि वैचारिक भिन्नता नये बहस और तर्क की संभावना उत्पन्न करती है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सह-अस्तित्व की बात करता है। इसमें विरोधी विचारधारा को भी सुनने-समझने और उचित लगने पर स्वीकार करने की बात की जाती है। अनुचित बात का उत्तर देने, विकल्पों को प्रस्तुत करने और अपने साथ-साथ दूसरों के सम्मान का ख्याल रखने की बात सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की सीख है। यह भौगोलिक रूप से अपना-पराया की पहचान नहीं करता बल्कि मानवता के हित में वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को साथ लेकर चलता है। यह एक राष्ट्र की विशेषताओं और उसकी सांस्कृतिक पहचान को आगे बढ़ाता है, जिससे उस राष्ट्र के नागरिक अपनी सांस्कृतिक पहचान पर मतैक्य प्रकट करते हैं जिससे सामाजिक एकता स्थापित होती है। यह उस राष्ट्र की भाषा, साहित्य, कला और प्रथाओं को की बात करता है वहां के लोगों की पहचान का हिस्सा हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के कारण नागरिक अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति गर्व का अनुभव करते हैं वहीं इन विरासतों के प्रति नागरिक संवेदनशील भी होते हैं, जिससे नागरिकों को सोच और व्यवहार में एकता आती है। यह सिर्फ आमजन के लिए लोक व्यवहार में ही नहीं बल्कि राजनीतिज्ञों के लिए भी पथ प्रदर्शक बन जाता है। भाजपा के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी के अनुसार "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा का सहज स्वरूप हिन्दुत्व बन गया है। हिन्दुत्व केवल अयोध्या में मंदिर नहीं है, यह तो हजारों-हजारों वर्षों से हमारे अनुभवों की

सामूहिक बुध्दिमत्ता का प्रतीक है। इसलिए अक्टूबर 1961 में मदुरई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक को सम्बोधित करते हुए पंडित नेहरू ने कहा था- "भारत पिछले अनेक युगों से तीर्थ स्थलों के देश में बर्फीली हिमालय पर्वतमाला में स्थित बद्रीनाथ, केदारनाथ और अमरनाथ से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक आपको प्राचीन स्थलों के दर्शन होंगे। इन महान तीर्थों में ऐसी क्या बात हैं जो लोगों को दक्षिण से उत्तर और उत्तर से दक्षिण की यात्रा करने के लिए प्रेरित करती है। यह एक देश और संस्कृति की भावना है और इस भावना ने हम सबको जोड़ रखा है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि भारत भूमि उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में समुद्र तक फैली हुई है। भारत को एक महान देश समझने की अवधारणा युगों-युगों से चली आ रही है जिसे लोग पावन भूमि मानते है और इसी अवधारणा ने इसे एकसूत्र में बाँध रखा है। हालांकि यहां विभिन्न राजनैतिक स्वरूप के अलग-अलग राज्य रहे है और हम विभिन्न भाषाएं बोलते है फिर भी यह मृदुल बंधन हमें अनेक रूपों में इकट्ठा बांधे रखता है। आडवाणी अपनी पार्टी का राजनीति के बारे में कहते हैं कि "हिन्दुत्व हमारे लिए मात्र नारा नहीं है। यह भारतीय जनता पार्टी का वैचारिक मूलमंत्र है जिसमें उसकी पहचान और दृष्टि अत्यन्त विशिष्ट रूप से प्रकट होती है।

वरिष्ठ राजनेता राजनाथ सिंह कहते हैं कि इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता कि भारत एक राष्ट्र के रूप में सदियों पहले विकसित हुआ था। प्राचीन काल में भारत की एक राष्ट्र के रूप में मान्यता थी। 'राष्ट्र' और 'राज्य' शब्द के अन्तर को पहचानने में भारी भूल हो गयी। अंग्रेजी के शब्द 'नेशन' का अनुवाद हिन्दी में राष्ट्र कर दिया गया जबकि 'राष्ट्र' एक विशुध्द सांस्कृतिक अवधारणा है। 'राज्य की सीमाओं को लांघ कर उत्तर के हिमालय से लेकर दक्षिण के सागर तट तक 'राष्ट्र' की भावना सदियों पहले विकसित हुई। हमारा वैचारिक दृष्टिकोण सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से ओत-प्रोत हैं। इस देश की एकता विद्रोहियों के बार-बार अतिक्रमण के बावजूद कभी केन्द्रित नहीं हुई। वह इस कारण संभव हो सका, क्योंकि इस देश में राजनीतिक एकता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एकता थी। भारत पूरे संसार में एक मात्र भू-सांस्कृतिक राष्ट्र है। जिन देशों की एकता राजनैतिक कारणों से थी, वे बिखर कर अलग-अलग हो गये। मध्यकाल में भी भारत की एक राष्ट्र के रूप में पहचान बनी रही। परन्तु अंग्रेजों ने यहां आने के बाद भारत की एक राष्ट्र के रूप में पहचान को धुंधला करने का प्रयास किया। उनके इतिहासकारों ने कहा "भारत एक राष्ट्र कभी नहीं था। अंग्रेजों के आने के पश्चात् वह एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहा है। अंग्रेजों द्वारा दी गयी शिक्षा के प्रभाव में आकर कुछ भारतीयों ने भी यह कहना शुरू किया कि "भारत देश एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहा है।" डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' कहते हैं कि "जब हम राष्ट्र के आगे सांस्कृतिक शब्द का प्रयोग करते हैं, तब तत्काल हमारा ध्यान, राष्ट्र जनों के उन जीवन-मूल्यों की ओर जाता है जो शाश्वत ही नहीं, राष्ट्र जीवन को अहम् से वयम् की ओर तथा सयम् से ओम तत्सत् की ओर ले जाने वाले हैं। राष्ट्र जीवन को पूर्ण एवं सार्थक बनाने वाले हैं। राष्ट्रजनों की अंतश्चेतना को विकसित एवं सुदृढ़ बनाने वाले हैं। इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था जनित निष्ठा ही राष्ट्रजनों को राष्ट्रीय बनाती है। इस तरह राष्ट्रीयता का मूल स्वरूप राजनीतिक न होकर सांस्कृतिक है। निश्चित भू भाग तथा निश्चित निष्ठावान जन तो भौतिक उपकरण हैं। संस्कृति ही आध्यात्मिक, गुणात्मक तथा शाश्वत

जीवन-मूल्य है, जिनका अनुसरण करती प्रजा उसे राष्ट्र का रूप प्रदान करती है। मातृभूमि के प्रति भक्ति तथा जन के प्रति आत्मीयता का भाव सांस्कृतिक मूल्य हैं। यही तीनों मिलकर राष्ट्र को राष्ट्र बनाती हैं। राष्ट्र किन्हीं संप्रदायों तथा जन-समूहों का समुच्चय न होकर, एक जीवमान इकाई है। ऐसे राष्ट्र पुरुष का सजीव व्यक्तित्व है, जिसमें भूमि, जन एवं संस्कृति की जीवंत एकता का सतत निवास वर्तमान रहता है। सांस्कृति राष्ट्रवाद साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देता है। "साम्प्रदायिक सद्भाव एक अनेकार्थक अवधारणा है। यह मूलतः विभिन्न धर्मों, जातियों तथा क्षेत्रों के आधार पर लोगों का, जो अपने अलग-अलग समुदाय या संघों में रहते हैं, उनको निकटता, सहजीवन तथा परस्पर बोध सूत्र में बांधने का सामूहिक प्रयास है।"[2]

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ऐसी अवधारणा है जो सांस्कृतिक एकता को प्रोत्साहित करता है और नागरिकों को उनकी सांस्कृतिक समृद्धि के साथ एक साथ आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह सामूहिकता की भावना को बढ़ावा देता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सांस्कृतिक विविधता को समर्थन देता है। यह एक राष्ट्र के भिन्न सांस्कृतिक समुदायों को उनकी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने के लिए प्रोत्साहित करता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक राष्ट्र में सामाजिक और राजनीतिक सामंजस्य को बढ़ावा देता है। यह लोगों के बीच सांस्कृतिक विविधता के साथ भी एकता बनाता है और एक समृद्ध और संतुलित समाज की दिशा में मदद करता है। इस प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक राष्ट्र की पहचान को मजबूत बनाने का काम करता है और लोगों को उनकी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति गर्व करने के लिए प्रेरित करता है। यह राष्ट्र को बाहरी दुनिया में एक मजबूत और विश्वासी भूमिका देता है और उसे उच्च स्थान पर रखने का माध्यम बनता है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद किसी देश या राष्ट्र के विकास और सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एक विशेष भावना या आदर्श है जो किसी व्यक्ति या समुदाय को अपने राष्ट्र के प्रति गर्व और स्नेह करने के लिए प्रेरित करता है। इसके प्रभाव में नागरिक अपने राष्ट्र के सांस्कृतिक विरासत, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और स्वाभिमान को लेकर सजग और समर्पित रहते हैं। यह समाज में एक एकता और विश्वास का भाव संचारित करता है, जो देश की अखंडता और सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। किसी भी देश को मजबूत और स्थिर बनाए रखने में राष्ट्रीय एकता आवश्यक है। इसको स्थापित करने के लिए देश के अंदर की विविधता का सम्मान करना, विविधता को स्वीकार करना और समय-समय पर आपसी मेलजोल के माध्यम से समाज को संगठित करना आवश्यक है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, अनेकता में एकता की विशेषता को बढ़ावा देता है दूसरे शब्दों में कहें तो यह राष्ट्रीय एकता के लिए प्रेरित करता है। भारत में विशाल जनसंख्या और अलग-अलग रहन-सहन, वेश-भूषा के बावजूद हमारी साझी संस्कृति भारतीयों को इस विविधता को सामूहिक रूप से उत्सव के रूप में मनाना सीखाती है। विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, और समुदायों के लोग समान रूप से भारत की उपलब्धियों पर, इसके विरासत एवं संस्कृति के मुद्दे पर साथ आते हैं। एकता का यही भाव देश की अखंडता, समृद्धि और विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद देश के सशक्तिकरण और सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निष्कर्ष-

किसी भी देश की संस्कृति उस समाज के सर्वोत्तम गुणों को प्रकट करती है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद उन्हीं सर्वोत्तम गुणों के आधार पर समाज के सोचने और काम करने के स्वरूप में अन्तर्निहित होता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कोई तात्कालिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह प्राचीन समय से चली आ रही, संस्कारित, परिष्कृत वह अवधारणा है जो यहां के निवासियों के रहन-सहन, बोली-विचार और दैनिक जीवनचर्या में परिलक्षित होता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सांस्कृतिक धर्म, भाषा-बोली, खान-पान, और भौगोलिक सीमाओं मात्र पर ना केंद्रित होकर एक समृद्ध और अद्वितीय राष्ट्र की परिकल्पना करता है। यह एक देश की सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करने, विभिन्न संस्कृतियों के लोगों की समानताओं में वृद्धि करने, आपसी मेल-जोल बढ़ाने, एकतरफा सोचने और अकेले चलने की बजाय सामूहिकता को बढ़ाता है। यह किसी भी राष्ट्र की एकता और अखंडता को मजबूती प्रदान करता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्र की ओर इशारा करता है। धन-धान्य से पूर्ण, सर्वे भवन्तु सुखिनः और वसुधैव कुटुम्बकम वाली संस्कृति भारत में सांस्कृतिक गतिविधियों, कला, और सांस्कृतिक धरोहर के विकास में सहायक है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भारत की सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करने और अनेकता में एकता का सूचक है। भारत में विभिन्न सांस्कृतिक विविधता हैं, इसके बावजूद सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की परिधि में ये विविधताएं भी यहां के नागरिकों को स्वीकार हैं और सह-अस्तित्व की भावना के साथ यहां के नागरिक एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर रहते हैं। सह-अस्तित्व की भावना भारत की विविधताओं वाली संस्कृति को आकर्षक और बहुरंगी संस्कृति में परिवर्तित कर देती है। यह परिवर्तन यहां के नागरिकों के देखने के नज़रिये में होता है जो कि सकारात्मक है। कुल मिलाकर यह नज़रिया अर्थात सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भारत की एकता और अखंडता को मजबूत करने में सशक्त भूमिका निभाता है।

संदर्भ :

1. सलिल, सुरेश. (सं.). (2011). *गणेश शंकर विद्यार्थी रचनावली.* नई दिल्ली : अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड.
2. सोमरा, कर्ण सिंह. (1992). *साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना.* जयपुर : प्रिंटवैल प्रकाशक.

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में ज्ञान-निरूपण, शिक्षा की अवधारणा एवं शिक्षण अधिगम व्यवस्था

परमानन्द त्रिपाठी*

श्रीरामचरितमानस जन मानस की प्रेरणा का स्रोत है। इस महाकाव्य में क्रमशः: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों पर सम्यक दृष्टि डाली गई है। वैसे तो इस महाकाव्य के सातों कांड अपनी विशिष्टता के लिए महत्वपूर्ण है, किन्तु "उत्तरकाण्ड" जो रामचरितमानस का सातवाँ और अन्तिम काण्ड है, का अपने ज्ञान, वैराग्य. धर्म, शिक्षा एवं राजनीति के लिए परम वैशिष्ट्य है।

ज्ञान-निरूपण –

उत्तरकाण्ड में तुलसीदास जी ने ज्ञान का निरूपण बड़ी विशिष्टता के साथ किया है। तुलसीदास जी का विचार है कि ज्ञान और भक्ति दोनों ही मनुष्य को सांसारिक कष्टों से दूर करके उन्हें मोक्ष प्रदान करने का साधन बनते हैं। इस दृष्टि से ज्ञान और भक्ति में समानता है लेकिन ज्ञान और भक्ति के अन्तर को भी वे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ज्ञान, वैराग्य, योग और विज्ञान ये सब पुरुष वर्ग के है, जबकि भक्ति स्त्री वर्ग में आती है –

ज्ञान बिराग जोग बिग्याना । ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना

तुलसीदास के अनुसार ज्ञान मार्ग के द्वारा मोक्ष प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है जबकि भक्ति मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्त करना सरल है। उत्तरकाण्ड में तुलसीदास जी ने ज्ञान मार्ग का निरूपण करते हुए उसके सम्पूर्ण अंगों का वर्णन ज्ञान-दीपक रूपक के माध्यम से किया है। वे लिखते हैं कि यदि भगवान की कृपा से सात्विक श्रद्धा रूपी गाय हृदय रूपी घर में आकर निवास करे, अगणित कल्याण कारक, जप-तप, व्रत, यम, नियम अदि निवृतिरुपी नोई से बाधा जाए तथा निर्मल मन रूपी अहीर विश्वास के पात्र में दूध दुहने का कार्य करे। परम धर्ममय दूध दूहकर निष्काम अग्नि में उसे औटाया जाए फिर क्षमा और संतोष रूपी पवन गर्म दूध को ठंढा करे तत्पश्चात धैर्य तथा राम रूपी जामन देकर उसे जमावे तदन्तर प्रसन्नता रूपी मथने के बर्तन में डालकर विचार रूपी मथानी से इन्द्रिय रूपी खम्भे को आधार बनाकर तथा सत्य और प्रिय वाणी रूपी रस्सी से उस दही को मथकर निर्मल, सुभग एवं पवित्र, वैराग्य रूपी मक्खन निकाला जाय, उस मक्खन को उबालने के लिए शुभाशुभ कर्म रूपी ईधन द्वारा योग की अग्नि प्रकट की जाय, तब उसमे से समता रूपी मैल के जम जाने से ज्ञान रूपी घी शेष रह जाए और उस घी को बुद्धि ठंढा करे। फिर यह विज्ञान रूपी बुद्धि स्वच्छ घी को लेकर चित्त रूपी दीपक

---

* सहायक प्राध्यापक (बी.एड.), राजकिशोर सिंह महाविद्यालय, बरुइन जमनिया जिला-गाजीपुर

तैयार करे और उस दीपक को समता रूपी दृढ दीवट पर रखे तदन्तर कपास से जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति नमक अवस्थाओ एवं सत्व, रज एवं तम तीनो गुण रूपी बिलौलों को निकालकर तुरीयावस्था रूपी रुई की सुन्दर कड़ी बत्ती बनावे, फिर उस तेज राशि विज्ञानमय दीपक को जलावें, जिसके समीप जाते ही सम्पूर्ण मादादि पलंग जल कर नष्ट हो जाए। तत्पश्चात उस विज्ञानमयी दीपक से निरंतर 'सोय्हमस्मि' की अखण्डवृत्ति रूपी प्रचण्ड लौ निकलती रहे तभी उस दीपक से आत्मानुभवजन्य सुख रूपी प्रकाश चारो ओर फैलेगा, जिससे संचार के उत्पाद, भेद और भ्रम का नाश हो जायेगा। ऐसे विज्ञान मय दीपक से प्रबल अविद्या का मोहादि परिवार रूपी तम मिट जाता है और प्रकाश पाकर बुद्धि हृदय रूपी घर में बैठकर अविद्या की गांठ को खोल डालती है जब यह गांठ खुल जाती है तभी जीव कृतार्थ हो जाता है।

इस तरह अज्ञान और अविद्या का विनाश ज्ञानरुपी दीपक द्वारा हो जाता है। उस समय माया अनेक विघ्न उपस्थित करती है। यह पहले तो बहुत सी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ भेजतीं है जो आकर बुद्धि को लोभ दिखाती है। ये कल-बल-छल द्वारा ज्ञानदीप के पास जाती है और अपने आंचल की वायु से दीपक को बुझा देतीं है। यदि बुद्धि परम सयानी हुई तो यह अनहित समझ कर उनकी ओर दृष्टि नहीं करती। यदि उस माया जन्य बिघ्न से बुद्धि को बाधा न हुई तब देवता बिघ्न डालते हैं । समस्त इन्द्रियां इस हृदय रूपी घर के झरोखे हैं और प्रत्येक झरोखे पर इन्द्रियों के देवता धरना दिए वैठे रहते हैं। विषय रूपी हवा का झोंका अता हुआ देखकर हठपूर्वक कपाट खोल दिया जाता है, जिससे विज्ञान रूपी दीपक बुझ जाता है। तब न गांठ खुलती है और न प्रकाश रहता है, अपितु विषय रूपी पवन से बुद्धि भी व्याकुल हो जाती है। जब विषय पवन बुद्धि को व्याकुल कर देता है, तब भला ज्ञान दीपक को कौन जला सकता है ? तब अज्ञानी जीवन अनेक सांसारिक कष्ट भोगता है। इसलिए माया को अत्यंत दुस्तर कहा गया है। इसी कारण ज्ञान के विषय में कहना कठिन है, समझना कठिन है और साधना कठिन है। ज्ञान के मार्ग को कृपाण की धार कहा जाता है, इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती लेकिन जो इस ज्ञान - मार्ग को पार कर लेता है, वही अंत में कैवल्य मुक्ति रूपी परम पद को प्राप्त करता है। इसीलिए तुलसीदास जी लिखते हैं कि ज्ञान मार्ग के द्वारा कैवल्य पद को प्राप्त करना बहुत कठिन है, यह बात संत, पुराण, निगम और आगम सभी कहतें हैं –

"अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम बद ।
राज भजत सोई मुकुति गोसाई । अनइच्छित आवइ बरिआई ।।"

जबकि राम का भजन करने से वह पद अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

शिक्षा की अवधारणा –

गोस्वामी तुलसीदास जी मर्यादावादी समाज सुधारक संत थे। वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे, जिसमे सभी लोग वैदिक धर्म के अनुयायी हों, वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले हों, सज्जन हों और धर्म में रत होकर रामभक्त हों। इसीलिए उन्होंने संतों एवं असंतों का वर्णन करके यह समझाया कि मानव

को अधिक से अधिक संतों के गुण का अनुकरण करके सज्जन बनना चाहिए और असंतों का परित्याग करना चाहिए। तुलसीदास जी संत एवं असंत के आचरण की तुलना कुल्हाड़ी एवं चन्दन के आचरण से करते हैं –

'संत असंतन्हि के असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ।।'

कुल्हाड़ी चन्दन के वृक्ष को काटने का काम करती है परन्तु चन्दन कुल्हाड़ी को अपना गुण देकर उसे भी सुगन्धित बना देता है। इसीलिए चन्दन तो देवताओ के मस्तक पर चढ़ता है और कुल्हाड़ी का मुह आग में तपाकर पीटा जाता है। संत लोग क्षमाशील होने के कारण देवों के सामान पूज्य हैं और संसार भर को प्रिय होते हैं। वे कभी विषयों में लिप्त नहीं होते, शील और सद्गुणों की खान होते हैं, सबसे सामान भाव रखते हैं और अजातशत्रु होते हैं। वे सदैव मन-कर्म-बचन से छल-कपट रहित होकर भगवान की भक्ति करते हैं, वे सबको मान प्रतिष्ठा देते हैं और स्वयं मानरहित हाते हैं, कामना रहित होते हैं। उनके लिए निंदा और स्तुति दोनों सामान होती है, इसीलिए वे भगवान को सबसे अधिक प्रिय होते हैं।

तुलसीदास जी असंतो एवं असज्जनो के लक्षणों का निरूपण करते हुए लिखते हैं कि – असंतों के ह्रदय में सदैव अत्यधिक जलन बनी रहती है। वे दूसरों की निंदा बड़े चाव से करते हैं और सुनते हैं। वे कामी, क्रोधी, लोभी, कपटी, घमण्डी, कुटील एवं पापी होते हैं। वे अकारण ही सबसे वैर रखते हैं। वे मोर की तरह मीठे बचन बोलते हैं लेकिन उनका ह्रदय इतना कठोर होता है कि विषैले साँपों को भी वे खा जाते हैं। वे पर स्त्री, परनिंदा, परायाधन, में आसक्त रहते हैं। वे नर देही राक्षस होते हैं, उन्हें यम लोक का भी डर नहीं होता है। वे स्वार्थपरायण होते हैं और ब्राह्मणों तथा देवों, परमेश्वर सभी से द्रोह रखते हैं। इन पापों के कारण ही असंतों पर परलोक नष्ट हुआ रहता है।

संत-निरूपण से उस समय की शिक्षा की अवधारणा को समझा जा सकता है। उस समय शिक्षा मुख्यत: मानव मूल्यों पर केन्द्रित थी। मनुष्य को काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ से दूर करके उसे संत ह्रदय बनाना ही, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। 'ज्ञान बिराग जोग बिग्याना' ये चार शब्द शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों के लिए महत्वपूर्ण है।

शिक्षक के सन्दर्भ में 'ज्ञान-विराग जोग बिग्याना' से तात्पर्य यह है कि ज्ञान अर्थात शिक्षक को ज्ञानी होना चाहिए। वह जिस विषय का अध्ययन करा रहा हो उस विषय पर उसका पूर्ण अधिकार होना चाहिए। पूर्ण ज्ञान के आभाव में वह विषय को छात्रों को पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर सकेगा, यही नहीं पूर्ण ज्ञान के आभाव में वह गलत बातों का वर्णन भी कर सकता है। अत: शिक्षक का सबसे पहले ज्ञानी होना आवश्यक है।

'बिराग' अर्थात वैराग्य।' शिक्षक के लिए वैराग्य से तात्पर्य यह है कि वह शिक्षा विना किसी लोभ के प्रदान करे। शिक्षा प्रदान करने को अपनी जीविका का साधन बनाने से ही शिक्षा व्यवस्था दूषित होती है। ज्ञान प्रदान करने में किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं होना चाहिए। जो शिक्षक धन आदि के लोभ में शिक्षा प्रदान करते हैं, उनके लिए कहा गया है –

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महूँ परई।

इसी प्रकार 'जोग' से तात्पर्य है ध्यान, नियम, संयम आदि। शिक्षक को नियमबद्ध होकर ज्ञान प्रदान करना चाहिए। शिक्षक में संयम होना चाहिए और छात्र को क्रमबद्ध रूप से ज्ञान प्रदान करना चाहिए। इसके लिए सरल से कठिन की ओर नियम को ध्यान में रखकर शिक्षा देनी चाहिए। एक निश्चित नियम के अभाव में शिक्षक का शिक्षण अव्यवस्थित हो सकता है।

'बिग्याना' से तात्पर्य है 'बिज्ञान' अर्थात वह ज्ञान, वह सिद्धांत जो तर्क द्वारा सत्यापित हो। शिक्षक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का होना अत्यंत आवश्यक है। वह जो भी ज्ञान प्रदान करे वह तर्कपूर्ण हो और सत्यापित सत्य हो। यही नहीं शिक्षक को जागरुक भी होना चाहिए, जिससे वह नए-नए सिद्धांतो, नई-नई तकनीक तथा अन्य नवीन जानकारी को तर्कपूर्ण ढंग से छात्रों के सम्मुख प्रदर्शित करके छात्रो के ज्ञान को विस्तृत करे।

इसी प्रकार शिक्षार्थी को भी 'ज्ञान' अर्थात शिक्षा ग्रहण करने में रूचि रखने वाला होना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से ही वह ज्ञान प्राप्त करने में सफल हो सकता है। छात्र में 'विराग' अर्थात वैराग्य का भाव होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि छात्र को शिक्षा प्राप्त करते समय प्रत्येक प्रकार के सांसारिक, भौतिक सुखों का त्याग करना चाहिए और साधुओं की भांति सदा सादा जीवन व्यतीत करते हुए अपनी शिक्षा पूरी करनी चाहिए। आश्रम व्यवस्था के प्रथम चरण में भी इसी बात का उल्लेख है। छात्र को 'जोग' अर्थात नियम, संयम, ध्यान आदि के प्रति आग्रह रखना चाहिए। उसे नित्य नियम से जोग, नियम, संयम, ध्यान आदि के साथ ही साथ ध्यानपूर्वक गुरु की बातों को, उनके उपदेशों को सुनना और ग्रहण करना चाहिए। छात्र के व्यक्तित्व में उच्छृंखलता नहीं होना चाहिए बल्कि उनके व्यवहार में संयमता और गंभीरता होना चाहिए। उसे किसी भी बात को तर्क पूर्ण ढंग से सीखना चाहिए तथा नये-नये अविष्कारों के प्रति रूचि व जानकारी रखने वाला होना चाहिए। उसमे तर्क करने की क्षमता होनी चाहिए तथा उसमे प्रश्न पूछने की प्रवृति भी होनी चाहिए जिससे कि उसके ज्ञान को स्थायित्व प्राप्त हो सके।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षक-शिक्षार्थी दोनों को संत हृदय होना चाहिए। उनका आचरण संतों के समान होना चाहिए तभी वे 'ज्ञान बिराग जोग बिग्याना' को अपना कर शिक्षण व्यवस्था को प्रभावी बना सकते हैं।

शिक्षण अधिगम व्यवस्था -

उत्तरकाण्ड में तुलसी ने राम के राज्य की जो अनुपम कल्पना की है, उसी को भारत के राष्ट्रपिता ने आदर्श राज्य की संज्ञा दी है। इस आदर्श राज्य की कल्पना तुलसी ने इसलिए की क्योंकि, उस समय राज्य-शासन अत्यन्त भ्रष्ट था, प्रजा संत्रस्त थी। तुलसी की यह 'आदर्श राज्य' सम्बन्धी विचारधारा भारतीय संस्कृति की नीव पर अवस्थित है, क्योंकि इसमे तुलसी ने रामराज्य का जो निरूपण किया है, वह नि:संदेह सम्पूर्ण विश्व के

लिए अनुकरणीय है। राम के राज्य में कोई शोक नहीं था, कहीं वैस्भाव नहीं था, सभी लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। राम के प्रताप से सर्वत्र समता का भाव उत्पन्न हो गया था, सभी लोग वेद मार्ग पर चलते थे। दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से सभी लोग मुक्त हो गए थे, उस समय वहां कोई दु:खी नहीं था। राम के राज्य में सुख-सम्पत्ति का वर्णन शारदा भी नहीं कर सकती थी. क्योंकि समस्त प्रजाजन बड़े उदार एवं परोपकारी थे। वन में वृक्ष सदैव फलते-फूलते रहते थे। नाना प्रकार के पशु निडर होकर विचरण करते रहते थे और आनंद में मग्न रहते थे। त्रेतायुग में सम्पूर्ण सतयुग जैसा आचरण होता था। यह जानकर कि जगत की आत्मा के भगवान मर्यादा पुरुसोत्तम श्रीराम ही आजकल राजा हैं, पर्वतों ने मणियों के भंडार खोल दिया, नदियाँ शीतल, निर्मल जल लेकर प्रवाहित होती थीं। समुद्र अपनी मर्यादा में रहते थे। सूर्य. चन्द्रमा अपनी किरणों से जगत की अवश्यकताओ की पूर्ति किया करते थे और मेघ मांगने पर जल देते थे अर्थात रामराज्य में सब प्रकार की सुव्यवस्था थी। रामराज्य वर्णन का प्रमुख उदहारण दृष्टव्य है –

रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गये सब सोका।
बयरु न कर कहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।
वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहीं भय सोक न रोग।।
दैहिक दैविक भोतिक तापा। राम राज नहीं काहुहि व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति निति।

'रामचरितमानस' के अध्ययन से पता चलता है कि रामराज्य में शिक्षण अधिगम की व्यवस्था, वर्तमान समय के शिक्षण अधिगम व्यवस्था की तरह विस्तृत और कठिन न होकर संक्षिप्त और सरल थी। शिक्षा का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के नैतिक आचरणों से था, इसलिए ऋषि-मुनियों, संतों आदि को गुरु-पद प्राप्त था और वे उपदेशों के द्वारा ज्ञानार्जन कराकर व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाते थे। एक ही गुरु सभी प्रकार की शिक्षा देने में समर्थ था लेकिन नैतिक बातों की शिक्षा देना ही अधिक प्रचलित था। यह इस उदहारण से सिद्ध भी होता है–

एक बार गुरु लीन्ह बोलाई । मोहि नीति बहु भांति सिखाई ।।

गुरु के अतिरिक्त अन्य श्रेष्ठजनों से भी लोग ज्ञानार्जन किया करते थे। उत्तरकाण्ड के वर्णन से पता चलता है कि उस समय शिक्षण के लिए 'प्रश्नोत्तर' तथा 'व्याख्यान विधि' का प्रयोग होता था। लोग अपने शंकाओ के समाधान के लिए प्रश्न पूछते थे, व्याख्याओ आदि के द्वारा उनके शंकाओं का समाधान किया जाता था। जैसे – संत, असंत के भेद तथा उनके लक्षण के बारे में जानने की इच्छा भरत जी के मन में होती है और वे भगवान राम से संत-असंत के बारे में पूछते हैं-

'संत असंत भेद बिलगाई । प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ।।

'सुना चहउ प्रभु तिन्ह कर लच्छन ।'

इसी प्रकार शिव-पार्वती संवाद प्रकरण में भी पार्वती जी के मन में एक संदेह उत्पन्न होता है कि कैसे कौवे का शरीर पाकर भी काक भुशुण्डी वैराग्य, ज्ञान और विज्ञान में दृढ़ हैं उनका राम जी के चरणों में अत्यंत प्रेम है और उन्हें राम जी की भक्ति भी प्राप्त है-

'बिरित ग्यान बिग्यान दृढ राम चरण अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति मोहिं परम संदेह ।।

अपनी इस शंका का समाधान करने के लिए पार्वती जी भी शिव जी से प्रश्न करतीं है कि किस प्रकार एक कौआ ऐसी दुर्लभ हरी भक्ति को पा गया-

'सो हरिभगति काग किमी पाई। बिश्वनाथ मोहि कहहु बुझाई ।।'

और शिव जी 'सुनह परम पुनीत इतिहासा' कह कर पार्वती जी के शंकाओ का समाधान करते हैं। इसी सन्दर्भ में काकभुशुण्डी और गरुड़ जी के संबाद और प्रश्नोत्तर का प्रकरण भी बहुत महत्वपूर्ण है जिससे यह सिद्ध होता है कि रामराज्य की शिक्षा-अधिगम व्यवस्था में प्रश्नोत्तर बिधि तथा व्याख्यान विधि ही सर्वप्रमुख था। गरुण जी काकभुशुण्डी से सात प्रश्न करते हैं और उसका उत्तर वे व्यख्यापुर्वक जानना चाहते हैं –

'नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रश्न मम कहहु बखानी।

काकभुशुण्डी उन प्रश्नों का उत्तर अपनी बुद्धि के अनुसार कहीं विस्तार व कहीं संक्षेप में देते हैं –

'व्यास समास स्वमति अनुरूपा।'

उत्तरकाण्ड के इन वर्णनों से स्पष्ट होता है कि रामराज्य में नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि माना जाता था और शिक्षा के उद्देश्य भी मानवीय मूल्यों की प्रतिस्थापना करना था उस समय वर्तमान युग की तरह पुस्तक आदि का प्रचालन नहीं था। वेद-पुराण तथा कथाओं आदि के माध्यम से ही शिक्षा ग्रहण की जाती थी, जिन्हें गुरु आदि स्मरण रखते थे तथा उन्हें व्यख्यापूर्वक समझाते थे। वर्तमान समय में शिक्षण के लिये प्रयुक्त रचना कौशलों में से व्याख्या विधि, रामराज्य में शिक्षण में सर्वप्रमुख विधि थी।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वर्तमान की शिक्षा, राजनीति व समाज में उत्पन्न चुनौतियों से निपटने व समस्याओं के समाधान हेतु तुलसीकृत रामचरित मानस के अनुसरण की आवश्यकता है। इसी से स्वस्थ, नैतिक व मौलिक भारत का निर्माण संभव हो सकेगा।

सन्दर्भ :-

१. संपादक : डा० त्रिभुवन सिंह, तुलसी : सन्दर्भ और समीक्षा, प्रथम संस्करण, १९७६, प्राक्कथन, पृ० २.
२. रामचरितमानस, बालकाण्ड, श्लोक ७ – ३ .

३. वही, १३/५/ - १.

४. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, १२१, ख/१०.

५. वही, दोहा, १२२ख.

६. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, १९ग/४/,२०,२०/१.

७. वही, १०५ ख /१/ - १.

८. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ३६ /३/ - १.

९. वही, ३६ /२ /- २.

१०. वही, दोहा, ५३.

११. वही, ५३/४/-२

१२. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ५४/४//-२.

१३. वही, १२०ख /१/-२.

१४. वही १२२ ग /१/-१.

१५. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ३६/४/-१.

१६. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ९८ ख /४ /-१.

१७. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ११४ ख /८ /-१,

१८. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ११८ ख /२

१९, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ११९ क.

२०. संपादक, डा० गोपीनाथ तिवारी एवं अन्य : तुलसीदास, विभिन्न दृष्टियों का परिप्रेक्ष्य, प्रथम संस्करण १९७३, पृ० १२१.

२१. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ११९ख /९/-२.

२२. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा, ८७ क, ८७ ख-१,

२३. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, १२१ख /१/-२.

२४. वही, ९२ख /३ / -१.

२५. वही, १०६ ख /३/- १.

२६. वही, सोरठा, ८९क-१.

२७. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड,२५/१.

२८. संपादक, डा० गोपीनाथ तिवारी एवं अन्य : तुलसीदास, विभिन्न दृष्टियों का परिप्रेक्ष्य, प्रथम संस्करण, १९७३ पृ० १२२

२९. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ४७/४/-२.

३०. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ११६ख /१/-२/२

३१. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ८५ख /२/-१

३२. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ११८ख / २

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

देशभक्ति प्रधान हिन्दी फिल्में और भारतीय समाज

आदित्य कुमार मिश्रा*

भारत में सिनेमा मनोरंजन की एक महत्वपूर्ण विधा है। फिल्मों में कहानी ही नहीं, संवाद और गीत भी लोगों के मनोरंजन के लिये विशेष स्थान रखते हैं। कभी-कभी कुछ फिल्में अपनी कहानियों, संवादों, कलाकारों की अदाकारी और गीतों के ज़रिये केवल मनोरंजन ही नहीं परोसती बल्कि समाज पर गहरा प्रभाव भी डालती हैं। बात जब देशभक्ति प्रधान हिन्दी फिल्मों की हो तो इस पर चर्चा और प्रभाव देशव्यापी हो जाता है।

हिन्दी की देशभक्ति फिल्मों में प्रायः बाहरी शत्रुओं से रक्षा, साजिश का पर्दाफाश, स्वतंत्रता संग्राम, युद्ध और त्याग आदि का प्रदर्शन किया जाता है। हिन्दी फिल्मों में आजादी से पहले ही देशभक्ति फिल्मों का निर्माण प्रमुखता से किया गया।

मूक फिल्मों के दौर में देशभक्ति फिल्में-

यूं तो भारत में सवाक (बोलती) फिल्मों का निर्माण वर्ष 1931 में बनी 'आलमआरा' नाम की फिल्म से हुई। लेकिन देशभक्ति प्रधान फिल्में मूक दौर में भी बनीं और सराही गयीं। वर्ष 1921 में भक्त विदुर नाम की फिल्म बनाई गयी थी जिसमें एक तरफ सामाजिक जागरुकता का चित्रण था वहीं भक्त विदुर की वेश-भूषा उस समय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी से मिलती-जुलती थी। महात्मा गाँधी की तरह वेश-भूषा दिखने के कारण इस फिल्म के प्रदर्शन में भी समस्या आई। "महाभारत के प्रसंगों पर आधारित इस फिल्म में दिखाया गया कि धृतराष्ट्र के दरबार में दरबारियों को 'डोंकी बहादुर' का खिताब दिया जाता है। यह ब्रिटिश सरकार के सम्मान 'दीवान बहादुर' पर व्यंग्य था। स्पष्ट था कि अंग्रेज सरकार इस फिल्म को सहन नहीं कर पाई और पहले उसने इसके प्रदर्शन में कई रूकावटें डालीं और फिर सरकार ने 'भक्त विदुर' पर प्रतिबंध लगा दिया।"[1] तमाम विरोधों के बाद सरकार ने फिल्म के प्रदर्शन की अनुमति दे दी, हालांकि फिल्म का नाम बदलना पड़ा। यह फिल्मकार दूरदर्शिता थी कि अंग्रेजी राज में भी वह प्रकारांतर से देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के प्रतीक महात्मा गाँधी को पर्दे पर दिखाने में कामयाब हो जाता है और जनता को देशभक्ति के लिए प्रेरित करता है।

वर्ष 1926 में 'वंदे मातरम आश्रम' नाम की फिल्म का निर्माण हुआ। भारत में शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के दखल का विरोध और लाला लाजपत राय व महामना मालवीय जी के विचारों से

* कॉपी एडिटर/रिपोर्टर, ईटीवी न्यूज, उत्तर प्रदेश/उत्तराखंड

प्रेरित भारतीय शिक्षा व्यवस्था का महिमामंडन करने वाली यह फिल्म भी अंग्रेजी राज के अन्याय का शिकार हुई। इसे कुछ समय के लिए प्रतिबंधित भी किया गया लेकिन फिल्मकार के प्रयासों से अंततः दर्शकों तक पहुंची और भारतीय समाज को जागृत करने का कार्य किया।

देशभक्ति और सामाजिक जागरुकता के क्षेत्र में वी. शांताराम का नाम बड़ी प्रमुखता से लिया जाता है। आजादी से पहले बनी देशभक्ति की फिल्मों में उनके निर्देशन में बनी 'उदयकाल' नाम की फिल्म का जिक्र प्रमुखता से किया जाता है। उस दौर में देश स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था तो पर्दे पर वी. शांताराम ने वीर शिवाजी की कहानी को पेशकर आम जनता में स्वराज की भावना को प्रेरित किया।

सवाक दौर की देशभक्ति प्रधान हिन्दी फिल्में-

सवाक दौर की प्रारंभिक देशभक्ति प्रधान हिन्दी फिल्मों में 'धर्मात्मा' का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। संत एकनाथ जी के जीवन पर आधारित इस फिल्म में अछूतप्रथा पर गहरा प्रहार किया गया है। अछूतप्रथा पर चोट करने वक्त एकनाथ जी की चरित्र पर्दे पर महात्मा गाँधी सदृश्य हो जाता है और बरबस ही महात्मा गाँधी की छवि और उनके द्वारा चलाया जा रहा अछूतोद्धार आंदोलन दर्शकों के मानसिक पटल पर छा जाता है। महात्मा गाँधी का स्मरण मात्र देशवासियों को आजादी के संघर्ष की ओर खींच ले जाता है। इस प्रकार देश की स्वतंत्रता की चर्चा होने लगती है। हालांकि अंग्रेजी राज में इस फिल्म का दर्शकों के बीच प्रदर्शन आसान नहीं था। अंग्रेजी हुकूमत की इस फिल्म पर कुदृष्टि पड़ी थी और प्रारंभ में इस फिल्म का नाम 'महात्मा' था उसे बदलकर 'धर्मात्मा' करना पड़ा था। अंग्रेज देशप्रेम की कोई भी बात पर्दे पर आने नहीं देना चाहते थे लेकिन भारतीय फिल्मकार भी अपनी जिद के पक्के थे। थोड़ा-बहुत बदलाव करके वे पर्दे पर इस फिल्म को लाने में कामयाब रहे। बाद में यह फिल्म भारतीय समाज में देशभक्ति के क्षेत्र में क्रांतिकारी फिल्म के रूप में दर्ज हो गयी।

"1943 में प्रदर्शित 'किस्मत' यूं तो मनोरंजन प्रधान व्यावसायिक फिल्म थी, पर जब यह फिल्म रिलीज हुई, तब भारत छोड़ो आंदोलन की चर्चा दुनियाभर में थी। इसलिए इस फिल्म में भी देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना का ध्यान रखा गया था। फिल्म का एक गीत 'दूर हटो ऐ दुनिया वालों हिंदुस्तान हमारा है' तब जन-जन की जुबान पर था और ऐसा प्रतीत होता था जैसे इसके बहाने सीधे ब्रितानी सरकार को ललकार गया हो।"[2] किस्मत फिल्म का जिक्र देशभक्ति प्रधान फिल्मों में बहुत ही सम्मान से लिया जाता है जिसमें कवि प्रदीप द्वारा लिखे गये उपरोक्त गीत का विशेष महत्व है।

देशभक्ति प्रधान फिल्मों में मनोज कुमार अभिनीत 'पूरब और पश्चिम' फिल्म का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। वर्ष 1970 में आई इस फिल्म का निर्देशन खुद मनोज कुमार ने किया था। फिल्म में पश्चिमी संस्कृति और भारतीय संस्कृति में अंतर और भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान को दिखाया गया है। फिल्म के शुरुआती दृश्यों में 1942 के दौर में भारतीयों द्वारा वतन की स्वतंत्रता के लिए किये जा रहे संघर्ष के दौरान

हरनाम नाम का एक भारतीय अपने ही वतन से गद्दारी करता है और एक स्वतंत्रता सेनानी को धोखा देकर अंग्रेज सरकार से ईनाम पाता दिखाया जाता है। आजादी के बाद इस स्वतंत्रता संग्राम सेनानी का बेटा जिसका नाम भारत है, पढ़ाई के लिए लंदन जाता है और वहां उसकी मुलाकात शर्मा से होती है जो कि उसके पिता के दोस्त हैं। शर्मा के परिवार में उनकी बेटी प्रिती, बेटा शंकर और पत्नी रहती हैं जिन्हें भारतीय संस्कृति के बारे में कुछ पता नहीं होता और वे लंदन की चाल-ढाल में रच बस चुके होते हैं। घटनाक्रम में भारत और प्रीति का आपस में जान-पहचान हो जाता है और वह प्रीति को भारतीय संस्कृति से परिचित कराता है। प्रीति द्वारा उसे पता चलता है कि लंदन में रहने वाले भारतीय अपने देश को गरीब और पिछड़ा मानते हैं और खुद के भारतीय होने पर उन्हें शर्मिंदगी होती है। भारत अपने देश की संस्कृति और गौरव से लंदन में बसे अपने संपर्क के भारतीयों को परिचित कराने का इरादा बनाता है। प्रीति, भारत से प्रभावित होती है, उसे भारत से प्रेम हो जाता है। वह भारत से शादी करना चाहती है लेकिन हिंदुस्तान आने के लिए तैयार नहीं होती। भारत उसे समझाता है इस पर वह आने को तैयार हो जाती है। भारत आकर वह यहां की संस्कृति में घुल-मिल जाती है। "है प्रीत जहां की रीत सदा", "दुल्हन चली" और "ओम जय जगदीश हरे" जैसे लोकप्रिय गीत फिल्म में ही नहीं बल्कि वास्तव में भारतीय संस्कृति का वर्णन करने में असरदार साबित होते हैं और दर्शकों को सच्चे अर्थों में देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत कर देते हैं।

1997 में आई 'बॉर्डर' फिल्म जो कि भारत-पाक के बीच 1971 में हुए युद्ध पर आधारित है ने सैनिकों की बहादुरी और त्याग की अनोखी कहानी प्रस्तुत की। सनी देओल, सुनील शेट्टी, अक्षय खन्ना, जैकी श्राफ, तब्बु और पूजा भट्ट जैसे सितारों से सजी इस फिल्म को जे.पी. दत्ता ने निर्देशित किया था। मां-बाप की उम्मीदों और प्रेमिका के इंतजार के बीच युद्ध में सैनिकों की बहादुरी, विजय और शहादत को बड़े ही मार्मिक ढंग से दिखाया गया है। 'संदेशे आते हैं, हमें तड़पाते हैं' और 'ऐ जाते हुए लम्हों' जैसे गीतों ने दर्शकों को बांधकर ऱखा। 1971 में भारत-पाकिस्तान के बीच हुए लोंगेवाला के युद्ध की सच्ची घटना पर आधारित इस फिल्म के प्रमुख अभिनेता सनी देओल ने मेजर कुलदीप सिंह चाँदपुरी की भूमिका अदा की है। युद्ध में विजय और सैनिकों की कुर्बानी के दृश्य दर्शकों में देशभक्ति का एहसास पैदा करते हैं। तकनीकी क्रांति के साथ-साथ सिनेमा ने भव्य प्रदर्शन करना शुरु कर दिया है। "सिनेमा को आवाज मिलने से पहले यानी मूक युग में भी कई फिल्मकारों ने स्वतंत्रता आंदोलन की लौ को प्रज्वलित रखने के राष्ट्रव्यापी अभियान में सक्रिय भागीदारी निभाई।"

निष्कर्ष-

भारत जैसे बहु-सांस्कृतिक देश में हिन्दी सिनेमा एक ऐसा ताकतवर माध्यम है जो हमें देशभक्ति और एकता के सूत्र में बांधे रखता है। वी. शांताराम और मनोज कुमार जैसे सशक्त फिल्मकारों ने अपनी फिल्मों के माध्यम से देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का प्रयास किया। आजादी से पूर्व के ऐसे फिल्मकार जो अपने विचारों को लेकर प्रतिबद्ध थे और कुछ निश्चित उद्देश्यों के साथ फिल्मों का निर्माण करते थे उन्हें इसकी

कीमत भी चुकानी पड़ती थी। उनकी फिल्मों के प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगना आम बात थी। लेकिन विपरीत परिस्थितियों में आई इन फिल्मों का भारतीय समाज पर गहरा असर भी रहा है। भारत-पाकिस्तान के आपसी संबंधों और युद्धों पर आधारित फिल्में भी देशभक्ति प्रधान फिल्मों में विशेष स्थान रखती हैं। '1997' में आई बॉर्डर हो वर्ष 2002 में आई 'गदर' पाकिस्तान को दुश्मन की तरह देखने के साथ-साथ हिंदुस्तान की ताकत को भी प्रदर्शित करते हैं। इन फिल्मों में भारत को जितता हुआ दिखाया जाता है वहीं इसके लिए जो भारतीय सैनिक अपनी कुर्बानी देते हैं, उसे भी छिपाया नहीं जाता बल्कि इस ढंग से प्रदर्शित किया जाता है जिससे की दर्शकों में देशभक्ति की भावना उमड़ती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी, सरदार भगत सिंह, सरदार बल्लभ भाई पटेल आदि महापुरुषों पर फिल्मों का निर्माण कर देश के प्रति इन स्वतंत्रता सेनानियों के समर्पण को दिखाया जाता है जो कि देशभक्ति की भावना प्रकट करता है और भारतीय समाज को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास करता है। वहीं पाकिस्तान के साथ युद्ध पर आधारित फिल्में भी दर्शकों में अपनी सेना की बहादुरी, उनकी कुर्बानी और धैर्य के प्रति सम्मान का भाव प्रकट करती हैं। कुल मिलाकर भारतीय समाज पर देशभक्ति प्रधान फिल्मों का बहुत ही सकारात्मक असर दिखाई पड़ता है।

संदर्भ :-

1. माथुर, श्याम. (2008). *सिने पत्रकारिता.* जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. पृ. 84-85.
2. वही, पृष्ठ -86.
3. वही, पृष्ट -84.

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

महात्मा गाँधी और राष्ट्रवाद : चंपारण आंदोलन के विशेष संदर्भ में

सौरभ मालवीय*

शोध सारांश-

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अनेक आंदोलन हुए, लाखों हिंदुस्तानियों ने अपनी जान की बाजी लगाई, अंग्रेजी हुकूमत जुल्म पर जुल्म ढाती रही, फिर भी हिंदुस्तानियों के हौसलों को तोड़ ना सकी। एक तरफ सशस्त्र क्रांति के झंडारबरदार भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, चंद्रशेखर आजाद, मन्मथनाथ गुप्त राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्लाह खान आदि क्रांतिकारियों ने देश की आजादी के लिए संघर्ष किया दूसरी तरफ महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अहिंसा आंदोलन चला। सशस्त्र क्रांति और अहिंसक आंदोलन दोनों ही मार्गों पर कठिनाईयां थीं। अंग्रेजी हुकूमत दोनों ही तरह के सेनानियों के साथ क्रूरता का व्यवहार करती थी लेकिन दोनों ही मार्गों के अनुयायियों ने हौसला बनाए रखा और एक दिन अंग्रेजी हुकूमत को भारत छोड़कर जाने को मजबूर कर दिया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हुए अनेक आंदोलनों में चंपारण आंदोलन बहुत ही महत्वपूर्ण आंदोलन है। यह महात्मा गाँधी द्वारा भारत में किया गया पहला सत्याग्रह था, जिसे सम्पूर्ण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक मील का पत्थर माना जाता है। यह आंदोलन बेहद सफल रहा और इस सफल आंदोलन ने भारतवासियों के अंदर उत्साह व ऊर्जा का संचार किया। इस शोध पत्र में महात्मा गाँधी द्वारा ब्रिटिश हुकूमत में चंपारण में नील की खेती में किसानों के साथ किये गये अत्याचारों के विरुद्ध किये गये आंदोलन और तत्कालीन चंपारण में अशिक्षा, जातिवाद, छूआछूत और साफ-सफाई आदि को लेकर चलाए गये अभियान का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है, जिसका राष्ट्रव्यापी असर हुआ।

संकेत शब्द: महात्मा गाँधी, राष्ट्रवाद, चंपारण, अंग्रेजी हुकूमत, स्वतंत्रता, राष्ट्रवाद, आंदोलन।

शोध का उद्देश्य -

चंपारण आंदोलन के आईने में महात्मा गाँधी के राष्ट्रवाद का अध्ययन एवं विश्लेषण करना।

उपकल्पना-

1- महात्मा गाँधी ने भारतभूमि में राष्ट्रवाद की चेतना जागृत की।
2- राष्ट्रवाद के सहारे में चंपारण के किसानों के ऊपर हो रहे अत्याचारों से निजात दिलाई।

* **शोधार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल**

शोध प्रविधि-

इस शोध पत्र में अंतर्वस्तु विश्लेषण पद्धति का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तावना:

महात्मा गाँधी अपने समय में समाज के अगुआ थे। सत्य और अहिंसा के दम पर बना उनका व्यक्तित्व, कृतित्व एवं विचार हर युग में मानव मात्र का पथ प्रदर्शन करता रहेगा। सत्य एवं अहिंसा को महात्म गाँधी अपना धर्म मानते थे। उनमें विश्व कल्याण की भावना थी और सत्य एवं अहिंसा के प्रयोग से उन्होंने भारत ही नहीं पूरी दुनिया में अपनी छाप छोड़ी। इस शोध में महात्मा गाँधी और राष्ट्रवाद को चंपारण आंदोलन के अंतर्गत अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। चंपारण सत्याग्रह के पीछे की वजह अंग्रेजी हुकूमत द्वारा चंपारण के किसानों से अन्यायपूर्वक नील की खेती कराना था। नील एक ऐसी वस्तु थी जिसकी भारी मात्रा में कपड़ा उद्योग को आवश्यकता थी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में चंपारण के किसानों को नील की खेती के लिए बाध्य कर दिया। किसानों को काबू में रखने और सरलता से नील का उत्पादन कराने के लिए अंग्रेजी हुकूमत ने नीलहे साहबों की व्यवस्था की। इन साहबों ने चंपारण क्षेत्र में बड़ी-बड़ी जमींदारियां हासिल की और स्थानीय किसानों से नील की खेती करानी शुरु कर दी। नील की ठेकादारी पहले भारतीय ठेकेदारों के पास थी जो किसानों के साथ पहले नरमी से पेश आते थे लेकिन नीलहे साहबों ने ये ठेके अपने हाथ में कर लिये और चंपारण के मोतिहारी, बारा, राजपुर, तुरकौलिया, पीपरा आदि स्थानों पर कोठियाँ स्थापित कर ली। इन कोठियों में बैठकर नीलहे साहब चंपारण के किसानों पर अत्याचार के नित-नये तरीके इजात करते। इनके अत्याचारों की ख़बर यहां के एक स्थानीय किसान राजकुमार शुक्ल द्वारा गाँधी जी तक पहुंची और उन्होंने सत्य, अहिंसा और अपने आध्यात्मिक बल से अंग्रेजी हुकूमत में हो रहे इन अत्याचारों का अंत किया। इस अध्ययन में गाँधी जी के तमाम प्रयासों को अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है।

तथ्य एवं विश्लेषण-

अंग्रेजी हुकूमत में चंपारण के किसानों से नील की खेती के लिए लगाए गये नीलहे साहब अपने ढंग से काम करने लगे। इन नीलहों ने भारतीय किसानों को कुछ पैसे देकर उनकी ज़मीन पर नील की खेती करानी शुरु कर दी। चंपारण में हर किसान के लिए प्रत्येक बीघे खेत में कम से कम तीन कट्ठा नील की खेती करने के लिए नियम बनाकर बाध्यता पैदा कर दी गयी और यह नियम तीनकठिया नाम से चर्चित हो गया। इस कुप्रथा से चंपारण के किसानों का बहुत शोषण हुआ। इसके विरुद्ध कई बार आवाज भी उठाई गयी लेकिन अंग्रेजी हुकूमत की ज्यादती ने हर बार किसानों को चुप रहने के लिए मजबूर कर दिया। कुछ समय के लिए यह आवाज थम जाती मगर फिर यह आवाज उठने लगती।

इस संबंध में वर्ष 1848 में फरीदपुर के मजिस्ट्रेट ने नील कमीशन नील कमीशन को बताया कि नील की खेती में चंपारण के किसानों के साथ बहुत अन्याय किया जाता है। इंग्लैंड में जो भी नील पहुंचता है उसके

लिए भारतीय किसानों के पसीने के साथ-साथ खून भी बहता है। नील की खेती कोई किसान करना नहीं चाहता और विरोध करने पर नीलहे साहब अंग्रेजी सरकार के संरक्षण में किसानों को खूब मारते थे। किसानों की जान तक चली जाती थी लेकिन ये नीलह ज़रा सी भी नरमी बरतने को तैयार नहीं होते।

दरअसल भारत में चंपारण से पहले नील की खेती बंगाल सूबे में होती थी। वहां के किसानों को नील की खेती की बजाय तंबाकू की खेती में ज्यादा फायदा था लेकिन अंग्रेजी हुकूमत अपने फायदे के लिए किसानों को नील की खेती के लिए बाध्य करती थी। 1857 के संग्राम के बाद बंगाल में नील की खेती करने वाले किसानों ने आंदोलन कर दिया। समय बीतने के साथ ही यह आंदोलन उग्र रुप लेता चला गया और बंगाल में नील की खेती करा पाना अंग्रेजों के वश से बाहर की बात हो गयी। बंगाल में नाकाम होने पर नीलहे साहब बिहार की ओर रुख किये और चंपारण को अपने शोषण का केंद्र बनाए। सबसे पहले उन्होंने बेतिया राज से कुछ गाँवों को ठेके पर लिया और वहां नील की खेती करानी शुरु कर दी। बेतिया राज को लालच देकर नीलहे साहबों ने क्षेत्र के गांवों से मालगुजारी वसूलनी शुरु कर दी। बेतिया राज से संबंध अच्छे कर नीलहों ने किसानों से जबरदस्ती खेती करानी शुरु कर दी। लागत अधिक होने के बावजूद उन्हें नील की बिक्री नीलहों द्वारा तय कीमत पर करनी पड़ती थी। इन अत्याचारों को लेकर चंपारण के किसानों में आक्रोश बना रहता जो कभी-कभी संगठित रूप में बाहर आता। बात सरकार तक पहुंचती तो कभी-कभी कार्रवाई होती और कुछ दिनों के लिए नील की खेती बंद रहती, समय बीतने के बाद नीलहे किसानों को लालच देकर या जबरदस्ती नील की खेती शुरू करा देते थे।

एक बार जर्मनी में एक ऐसी घटी जिसने किसानों पर नीलहों के अत्याचारों में और वृद्धि कर दी। वहां हुए कृत्रिम रंगों के अविष्कार ने भारत में तैयार नील की फसल की मांग कम कर दी जिससे नीलहों को घाटा होने लगा। इन घाटे को पूरा करने के लिए किसानों पर कई तरह के टैक्स लगा दिये गये। किसान इन टैक्स को चुकाने में अक्षम थे और हिंसा के बावजूद लगातार इन टैक्सों का विरोध करते रहे। तीनकठिया समेत नये टैक्स से आजिज आकर राजकुमार शुक्ल नाम के एक स्थानीय व्यक्ति ने किसानों की समस्याओं को लेकर संघर्ष शुरु कर दिया लेकिन नीलहों के आगे उन्हें निराशा ही हाथ लगी। उसी दौर में उन्हें कांग्रेस से जुड़ चुके महात्मा गाँधी का नाम और उनके कुछ साहसिक काम सुनने को मिला। नील की खेती में हो रहे अत्याचार से मुक्ति के लिए उन्हें महात्मा गाँधी से मदद मिलने की उम्मीद जगी। उन्होंने गाँधी जी से मुलाकात की और किसानों की दुर्दशा का जिक्र कर उन्हें चंपारण आने का आग्रह किया। गाँधी जी अपनी व्यस्तताओं के कारण कुछ समय तक चंपारण नहीं आ सके, लेकिन शुक्ल ने अपना प्रयास जारी रखा और वर्ष 1917 में गाँधी जी को चंपारण लाने में सफल हो गये।

चंपारण पहुंचकर गाँधी जी ने किसानों की दुर्दशा देखी और समस्या की गंभीरता का अध्ययन करना शुरु किया। उन्होंने नीलहे साहबों और कमिश्नर से मिलकर किसानों की समस्या का जिक्र किया। गाँधी जी बातों को सुनकर कमिश्नर ने उल्टा ही रुख अपना लिया और उन्हें तत्काल चंपारण छोड़ने के लिए कहा। गाँधी

जी को लगा कि सरकार उन्हें गिरफ्तार कर सकती है इसलिए उन्होने रणनीति से काम करना शुरु किया ताकि गिरफ्तारी हो भय की बजाय किसानों में निडरता आए। अप्रैल, 1917 को गाँधी जी मोतिहारी पहुँचे और वहां के प्रसिद्ध वकीलों से मुद्दे पर चर्चा की। स्थानीय परिस्थितियों को जानने और एक तात्कालिक घटना को समझने के लिए वे मोतिहारी के जसौलीपट्टी गाँव के लिए रवाना हुए, जहां के रैयतों के साथ पीपरा कोठी के नीलहे साहब ने अत्याचार किया था। रास्ते में एक सिपाही ने उन्हें रोका और अपने साथ चलने को कहा। गाँधी जी उसका मंतव्य समझ गये और अपने साथ चल रहे लोगों से तय गाँव में चलने की बात कहकर सिपाही के साथ चल पड़े।

सिपाही उन्हें डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास ले गया जहां उन्हें एक नोटिस मिली जिसमें जिलाधिकारी का लिखा आदेश था कि आपकी उपस्थिति से चंपारण में शांति भंग का खतरा है। आप चंपारण छोड़कर बाहर चले जाइये। गाँधी जी ने इस पत्र का जवाब दिया कि आपने मेरी उपस्थिति का गलत अर्थ निकाला है। मैं अपने जिस मकसद के लिए आया हूं वह हासिल करने का प्रयत्न करता रहूंगा और यहां से नहीं जाऊंगा। आप जो दंड देना चाहें मुझे स्वीकार है। पूरे वाक़ये खासकर गाँधी जी की गिरफ़्तारी की आशंका की खबर भारत भर में पहुंच गयी। सरकार द्वारा मामले को गंभीरता से लिया गया और सरकारी नोटिस पर 18 अप्रैल, 1917 को को गाँधीजी सब-डिवीजनल अफ़सर की कचहरी में उपस्थित हुए, जहां हजारों की संख्या में स्थानीय एवं दूर-दूर के लोग उपस्थित थे। इतनी भीड़ देखकर पुलिस बुलानी पड़ी। पुलिस देखकर भी भीड़ में से कोई भी व्यक्ति प्रशासन से तनिक भी नहीं डरा, भागने का सवाल भी नहीं खड़ा हुआ। गाँधी जी ने जनता के इस साहस को देखा तो स्थानीय प्रशासन का जनता के बीच व्याप्त रहने वाले भय को हमेशा के लिए खत्म करने की बात सोची और निडरतापूर्वक गिरफ्तारी देने का निश्चय किया। सरकारी वकील ने अभियोग पढ़ा और चंपारण ना छोड़ने के कारण उन पर धारा 188 के तहत मुकदमे की बात कही। गाँधी जी से पूरे संयम से कहा कि में अपना अपराध कबूल करता हूं। गाँधी जी को बार-बार गिरफ्तारी का भय दिखाकर चंपारण छोड़ने के लिए कहा गया, लेकिन वे टस से मस नहीं हुए। तमाम प्रयास के बाद भी मजिस्ट्रेट गाँधी जी को डरा नहीं पाया। बिहार सरकार को भी गाँधी जी की गिरफ्तारी के बाद की स्थिति प्रतिकूल लगी, इसलिये उनपर लगे सारे मुकदमे वापस ले लिया गया। इस प्रकार यह चंपारण आंदोलन में गाँधी जी की पहली विजय थी।

अब गाँधीजी ने अपने उद्देश्य को पूरा करने की ओर कदम बढ़ाना शुरु किया। नील की खेती में लगे किसानों की समस्या के अलावा गाँधीजी को चंपारण में साफ-सफाई की समस्या, मलेरिया आदि बीमारियों का आतंक, जातिवाद, दलितों के साथ छूआ-छूत का बर्ताव और अशिक्षा भी दिखी। गाँधी जी को लगा कि इन बुराइयों से मुक्ति भी जरूरी है। गाँधी जी ने इन बुराईयों को समाप्त करने की दिशा में प्रयास शुरु किया। चंपारण में तीन पाठशालाएँ खुलीं। इन पाठशालाओं में स्वास्थ्य रक्षा के ज्ञान और साफ-सफाई पर भी उनका बल दिया जाता था। लड़कों के साथ-साथ लड़कियों को भी शिक्षित करने के लिए बड़हरवा लखनसेन और मधुबन में जो पाठशालाएँ खुलीं, उनमें लड़कियों को भी पढ़ाया जाता था। गंदगी, बीमारी, अशिक्षा, और

जातिवाद जैसी सामाजिक बुराइयों की समाप्ति के लिए संघर्ष के अलावा चंपारण में नील की खेती करने वाले पीड़ित किसानों की समस्या का समाधान भी उनका उद्देश्य था।

उन्होंने लोगों से अहिंसा के मार्ग पर चलकर संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। गाँधी जी के पास 19 अप्रैल 1917 से किसान बयान देने आने लगे। अगले दिन सरकार द्वारा गाँधी जी पर लगे मुकदमे पूर्णतः वापस ले लिये गये साथ ही नील की खेती के संबंध में गाँधी जी द्वारा की जा रही जांच में भी मदद करने का आदेश जिलाधिकारी द्वारा स्थानीय प्रशासन को दिया गया। गाँधी जी ने अगले कई दिनों तक चंपारण के किसानों की स्थिति का ब्यौरा जुटाया और 12 मई, 1917 को इसकी एक रिपोर्ट तैयार कर बिहार सरकार को सौंप दिया। गाँधी जी की गतिविधियों ने जनता के भय को खत्म कर दिया। दूसरी तरफ गाँधी जी से परेशान होकर नीलहों ने दुष्प्रचार करना शुरू किया। नीलहे स्वयं अपनी कोठियों में आग लगा देते थे और आरोप किसानों पर मढ़ देते। 14 मई और 18 मई 1917 की रात अलग-अलग स्थानों पर स्थित कोठियों में आग लगवाकर नीलहों ने आरोप गाँधी जी के कार्यक्रम पर मढ़ दिया। गाँधी जी सारी बातों को समझते हुए 20 अप्रैल को चंपारण के जिलाधिकारी को एक पत्र भेजा और सारी बातों की सच्चाई सामने रख दी। बाद में एक जाँच कमीशन सिफ़ारिश की गई। बिहार सरकार ने के आग्रह पर छोटे लाट सर एडवर्ड गेटे से मुलाकात के लिए गाँधीजी 2 जून, 1917 को राँची के लिए रवाना हुए। बीच में कुछ समय के लिए पटना रुके और वहाँ पर मदन मोहन मालवीय, रायकृष्णसहाय, बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद आदि नेताओं से मिले। निर्णय हुअ कि अंग्रेज सरकार गाँधी जी को गिरफ़्तार करती है तो बाकी का काम मदन मोहन मालवीय जी संभालेंगे। इस बीच अंग्रेज नीलहों के प्रभाव वाले पायोनियर समाचार पत्र ने गाँधी जी के खिलाफ झूठी खबर छापकर नकारात्मक माहौल बनाना शुरू किया। पायोनियर के इस एजेंडे का उत्तर भारत के अलग-अलग अखबारों ने सच्ची तस्वीर उजागरकर दिया। अख़बारों ने बताया कि चंपारण का सत्याग्रह राष्ट्रीय स्तर पहुंच रहा है और देश गाँधी जी के साथ है। राँची पहुंचकर गाँधी जी सर एडवर्ड गेटे तथा कौंसिल के अन्य सदस्यों से मिले। इस मुलाकात के बाद सरकार ने एक जाँच समिति बनाई, जिसमें गाँधीजी भी एक सदस्य के रूप में शामिल थे। चंपारण जाँच समिति द्वारा जाँच कार्य शुरु हुआ जिसमें नीलहों तथा रैयतों के बयान लिया गया और जाँच रिपोर्ट तैयार हुई, जिसकी सिफारिश थी कि तीन कठिया समेत तमाम कुप्रथाएं (काले कानून) समाप्त किया जाए। इसके बाद भी नीलहों ने तमाम कुप्रयास किये कभी गाँधी जी के खिलाफ तो कभी प्रांतीय सरकार पर अनाप-शनाप आरोप लगाए। 4 मार्च, 1918 को गवर्नर जनरल ने चंपारण एग्रेरियन बिल को पास करके तीनकठिया के साथ-साथ तमाम काले कानून खत्म कर दिये।

निष्कर्ष-

चंपारण में गाँधी जी द्वारा किया गया सत्याग्रह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ। यहां के किसानों के साथ अंग्रेजों के शासन में नील की खेती को लेकर लंबे समय से भयानक अत्याचार हो रहा था। किसानों के साथ-साथ उनका परिवार तक इस अत्याचार को भुगतने के लिए बाध्य था। स्थानीय

किसानों के विद्रोह के बाद भी कोई नतीजा नहीं निकलता था। उन्हीं किसानों में से एक राजकुमार शुक्ल ने गाँधी जी से सम्पर्क किया और चंपारण के किसानों की दुर्दशा बताते हुए मुक्ति दिलाने का आग्रह किया। गाँधीजी ने इस आग्रह को स्वीकार कर चंपारण में कदम रखा। अंग्रेजी हुकूमत के खौफ को कम करने में गाँधी जी ने निडरता पूर्वक किसानों से बात करना शुरु किया। गिरफ्तारी का डर दिखाए जाने के बाद भी गाँधी जी अपने रास्ते से पीछे नहीं हटे बल्कि नील की खेती में हो रहे अत्याचार के अलावा वहां के निवासियों को स्वच्छता, शिक्षा, स्वास्थ्य, जातिवाद, छुआछूत आदि मुद्दों पर जागरूक करने का प्रयास किया। गाँधी जी द्वारा निडरतापूर्वक संघर्ष में डटे रहने का परिणाम सामने आया और चंपारण के किसानों को नीलहे साहबों के अत्याचार से मुक्ति मिली। किसान जबरदस्ती नील की खेती की बजाय अपनी पसंद का फसल उगाने लगे। वहीं महात्मा गाँधी की ख्याति चहुँओर फैल गयी। आगे चलकर उन्होंने स्वतंत्रता के लिए चले राजनीतिक अहिंसक आंदोलन का नेतृत्व किया और अंततः 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्रता हासिल करने में कामयाब रहा।

संदर्भ :-

गाँधी संग्रहालय, मोतिहारी (बिहार)

गाँधी, मो. क. (1948). संपूर्ण गाँधी वाङ्.मय. नई दिल्ली: पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार.

गाँधी, मो. क. (1957). रचनात्मक कार्यक्रम : उसका रहस्य और स्थान. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गाँधी, मो. क. (2006). हिंद स्वराज्य (आठवाँ सं.). (अ. ठा. नाणावटी, अनु.) राजघाट: सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

गाँधी, मो. क. (2007). मेरे सपनों का भारत (दसवाँ सं.). (सि. ढड्ढा, संपा.) वाराणसी: सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

गाँधी, मो. क. (2007). सत्य के प्रयोग. (का. त्रिवेदी, अनु.) अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गाँधी, मो. क. (2007). सत्य ही ईश्वर है (आर. के. प्रभु, संपा.). अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

हिन्दी सिनेमा में किसानों का चित्रण : 'धरती के लाल' फिल्म के संदर्भ में

विंध्यलक्ष्मी पाण्डेय*

प्रस्तावना-

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां की अधिकांश जनता गांवों में निवास करती है। देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का विशेष स्थान है। मौसम में बदलाव हो, देश में चुनाव हो, तीज-त्यौहार हो या देश के विकास की बात हो, कृषि और किसान सदैव ही चर्चा में बने रहते हैं। समाचार पत्रों, टेलीविजन चैनलों के अलावा हिन्दी सिनेमा भी समय-समय पर 'कृषि और किसान' के मुद्दों को अपना विषय बनाता है। भारत में किसानों के मुद्दों पर दो बीघा जमीन, मदर इंडिया, धरती के लाल, मंथन, उपकार, किसान, लगान, पीपली लाइव आदि फिल्में बनीं और चर्चा का विषय बनी हैं। ग्रामीण जीवन में किसानों के लिए मौसम (बरसात और सूखा), कर्ज, गरीबी, स्वास्थ्य और शिक्षा सदैव ही ज्वलंत मुद्दे रहे हैं। हिन्दी सिनेमा ने किसानों का चित्रण करते हुए इन मुद्दों को पर्दे पर दिखाया है। खेती एक परिश्रम का कार्य है। आजादी के बाद से खेती में तकनीकी का प्रयोग बढ़ता गया है। मशीनीकरण के बाद कृषि क्षेत्र में लगे मजदूरों के सम्मुख बेरोजगारी की समस्या पहले से ज्यादा विकट हो गयी। वर्तमान समय में महात्मा गाँधी रोजगार गारंटी योजना ने ग्रामीण क्षेत्र के मजदूरों को 100 दिन का रोजगार अवश्य दे दिया है उसके बावजूद किसानों के जीवन में अनेक चुनौतियां हैं, जिनका चित्रण समय-समय हिन्दी सिनेमा में होता रहा है। इस शोध आलेख में 'धरती के लाल' फिल्म में प्रस्तुत तथ्यों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है।

शोध का उद्देश्य-

धरती के लाल फिल्म की विषय वस्तु का अध्ययन एवं विश्लेषण करना।

शोध की उपकल्पना-

हिन्दी फिल्मों में किसानों का चित्रण यथार्थ ढंग से किया जाता है।

* छात्रा, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

तथ्य एवं विश्लेषण-

सिनेमा एक खर्चीला माध्यम है। भारत में सिनेमा निर्माण अलग-अलग उद्देश्यों से किया जाता है। शुरुआती दिनों में सिनेमा का विषय-वस्तु यथार्थ के ज्यादा करीब था लेकिन समय बीतने के साथ ही सिनेमा ने उद्योग का रुप ले लिया और इसमें लाभ-हानि का समीकरण ज्यादा काम करने लगा। गाड़ी, बंगला, शहरी जीवन, सजी-धजी महिला, प्यार, मारधाड़-एक्शन, लटके-झटके वाले गीत-संगीत और नृत्य आदि दिखाना अन्य विषयों की तुलना में ज्यादा लाभकारी है। अतः सिनेमा में ज्यादातर इन्हीं दृश्यों की भरमार रहती है। तथापि सिनेमा निर्माण में कुछ सजग फिल्मकार भी हुए हैं जिन्होंने किसानों को भी अपनी फिल्मों का विषय बनाया है। वर्ष 1946 में 'धरती का लाल' नाम की एक फिल्म आई। इस फिल्म में किसानों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। यह फिल्म वर्ष 1942-43 में बंगाल में आए अकाल को आधार बनाकर निर्मित की गयी थी। भारत में ब्रिटिश हुकूमत राज कर रही थी। द्वितीय विश्वयुद्ध का दौर था। भारत विशेषकर बंगाल के किसानों की स्थिति ठीक नहीं थी। जमींदार, साहूकार और व्यापारी मौका पाकर कृषकों का शोषण करते थे।

फिल्म में साहूकार एक किसान (जिसे मुखिया के नाम से जाना जाता है) की खड़ी फसल देखकर उसपर डोरे डालने लगता है और थोड़े से अधिक पैसे का लालच देकर अनाज खरीद लेता है। फिल्म का यह दृश्य साहूकारों की चालाकी और कालाबाजारी का एक प्रतीक मात्र है। कुछ समय बाद जब किसानों के घर में रखा अनाज साहूकारों और व्यापारियों के पास पहुंच जाता है तो वे अनाज छिपाकर रख लेते हैं और बाजार में अनाज की कमी हो जाती है। उसके बाद यही अनाज किसानों को महंगे दामों पर मिलता है। फिल्म का एक किरदार रमजान हैरत से कहता है-किसे पता था कि हर चीज दोगुने-तीगुने दाम पर मिलेंगे। उन्हें वे सारी साजिश समझ आती है जिसमें फंसकर उनके खेतों या घर से अनाज साहूकार के गोदामों में पहुंच चुका होता है। फ़िल्म में कालाबाजारी और महंगाई की समस्या को दिखाया गया है। मुखिया का बेटा रामू अनाज खरीदने के लिए महाजन के गोदाम पर जाता है तो महाजन उसे अनाज का भाव काफी बढ़ाकर बताता है। रामू उससे दाम बढ़ाने पर गुस्सा जाहिर करता है और उसीसे खरीदे अनाज को इतने महंगे दाम पर बेचने के लिए ताने मारता है इस पर महाजन गोदाम में अनाज बहुत कम होने की बात करता है, जिसपर रामू गोदाम में झांककर सैकड़ों मन अनाज भरा हुआ पाता है। फिल्म के इस दृश्य में अनाज की जमाखोरी देखी जा सकती है। रामू उधार में महाजन के मनमाने दाम पर अनाज घर ले जाता है। इस प्रकार सस्ते अनाज बेचकर, महंगा अनाज खरीदने पर मजबूर यह किसान परिवार कर्जदार बन जाता है।

फ़िल्म में एक समय यह दिखाया जाता है कि जमींदार, मुखिया (किसान) की गरीबी देखकर उसकी जमीन को बंजर बताते हुए उसे खरीदने की बात करता है। किसान का बेटा अपनी जमीन बेचने से इनकार करता है। इस पर जमींदार अपने खेत से घास-फूस लाने से रोकता है फिर घुमा-फिराकर निरंजन के छोटे भाई की पत्रनी को साग-सब्जी लाने के लिए उसके खेत में भेजने की बात करता है। निरंजन उसे ताना मारते हुए कहता हे कि हमारी ज़मीन के बाद औरतों पर भी नज़र डालने लगे। इस प्रकार इस फिल्म में पूंजीपति

(जमींदार) को किसान की जमीन और औरत पर पूरी नज़र डालते हुए दिखाया गया है। बाद में गांव में अकाल के बाद बाढ़ के दृश्य दिखाई देता है। लोगों को जान के लाले पड़ जाते हैं। मजबूर होकर लोग कलकत्ता जाने पर मजबूर हो जाते हैं। कलकत्ता में गरीबी की समस्या के साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम के बीच खाई दिखाई जाती है। हालांकि यह खाई गरीबों में नहीं है लेकिन अमीरों के कारण यह बढ़ रही है। फ़िल्म के अंतिम भाग में लाचार मुखिया 'मृत्यु शैय्या' पर पड़ा दिखाई पड़ता है। वह अपने परिवार जनों से गांव लौट जानेकी बात कहता है। इसके बाद उसकी मौत हो जाती है। इसके बाद गांव के लोग अपने घर लौट जाते हैं और निरंजन सबसे बातचीत करके जिसके पास जो है आपस में साझा करके साझे की खेती के लिए तैयार हो जाते हैं। पूरा गांव मिलकर साझे की खेती करता है। फसल तैयार हो जाने पर फसल काटी जाती है और सामूहिक रूप से नवन्ना त्यौहार मनाई जाती है। इस दृश्य में एक गीत गाया जाता है - 'केकरा-केकरा नाम बताऊं इस जग में बड़ा लुटेरवा हो', एक हुए बिना काम ना चलिहें, सुनो किसान- मजदूरवा हो।' इस प्रकार गांव में सबकी उन्नति और खुशी वापस आती दिखाई पड़ती है। इस फिल्म में गीत-संगीत के माध्यम से किसानों की स्थिति और मनोदशा को प्रकट किया गया है। फिल्म का एक गीत है-

जय धरती मइया जय हो

यही माटी में जियन हमरो,

यही में मरन है भइया,

यही सगरी पूंजी,

यही है हमरो धन भइया,

जय धरती मइया जय हो

फ़िल्म का एक अन्य गीत इस प्रकार है-

"केकरा केकरा नाम बताऊं,

इस जग में बड़ा लुटेरवा हो,

एक हुए बिना काम न चलिहें,

सुनो किसान मजदूरवा हो,

मालिक और महाजन लूटें

और लूटे अन्नचोरवा हो,

जुल्म सितम का नाम मिटाओ.

एक होकर सब भईया हो

धरती के लाल फिल्म किसानों से जुड़े विभिन्न मुद्दों को बड़े ही स्वाभाविक ढंग से दिखाती है। सूखा और बाढ़ किसानों के जीवन की एक हकीकत है। किसानों का जीवन प्रत्यक्ष रूप से मौसम पर निर्भर रहता है। अगर सामान्य वर्षा हुई तो फसल अच्छी होती है अधिक वर्षा या कम वर्षा की स्थिति में किसानों की फसल का बर्बाद होना तय होता है। बिजली और डीजल की उपलब्धता से कम वर्षा की स्थिति में पानी चलाकर फसल को बचाया जा सकता है लेकिन गरीब किसान के लिए यह भी संभव नहीं होता। वहीं अधिक वर्षा और बाढ़ की स्थिति किसानों के लिए मुसीबत बनकर आती है। वहीं कालाबाजारी, जमींदारों की चालाकी, बेईमानी, धूर्तता, सरकार की निष्क्रियता या उदासीनता, धन बल से महिलाओं की इज्जत से खेलने जैसी समस्याएं गरीब किसानों के जीवन की गंभीर समस्या है। इस फिल्म के गीत काफी प्रशंसनीय हैं और फिल्म के विषय को बल प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष-

धरती के लाल फिल्म में किसानों से जुड़े मुद्दों और समस्याओं को बड़े ही यथार्थ ढंग से दिखाया गया है। यह फिल्म पूरे समाज के सामने किसानों के जीवन को दिखाने के लिए आईने का काम करती है। समय-समय पर किसानों को कर्ज की जरुरत पड़ती है। किसानों के लिए बैंकों में खाता खुलवाना, कर्ज हासिल करना आज भी आसान काम नहीं है। इस फिल्म में साहूकार द्वारा गरीब किसान की स्थिति का फायदा उठाकर उसके खेत को खरीदने की चालाकी दिखाई जाती है जिसे किसान का स्वाभिमानी बेटा ललकार कर असफल कर देता है। इस प्रकार यह फिल्म चालाक और बेईमान जमींदारों, साहूकारों और पूंजीपंतियों के करतूतों को दिखाया गया है वहीं सरकार की उदासीनता भी दिखाई पड़ती है। यद्यपि यह फिल्म अंग्रेजी हुकूमत के समय बनाई गयी थी लेकिन कमोबेस आज भी किसानों के जीवन में बहुत सुधार नहीं हुआ है। विदर्भ जैसे क्षेत्रों में कर्ज के कारण किसानों के आत्महत्या की ख़बरें आज भी आती हैं। ऐसी फिल्में समाज की सच्चाई को उजागर करती हैं और जिम्मेदार नेता, अधिकारी और सरकार को उचित कदम उठाने के लिए प्रेरित करती हैं। किसानों के जीवन पर हाल ही में पीपली लाइव जैसी सार्थक फिल्म आई है। इस तरह की फिल्मों की समाज को आवश्यकता है।

संदर्भ :-

1- हिन्दी फिल्में एक ऐतिहासिक अध्ययन, डॉ. चन्द्रभूषम गुप्त, राहुल पब्लिशिंग हाऊस.
2- धरती के लाल (फिल्म), निर्देशक-ख्वाजा अहमद अब्बास (1946)

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

भारतीय सिनेमा में गाँधी विचार : 'भक्त विदुर' और 'दो आंखें बारह हाथ' फिल्मों के संदर्भ में

पंकज कुमार सिंह*

प्रस्तावना-

महात्मा गाँधी का विचार आते ही एक सीधे-सादे वेश-भूषा और मजबूत इरादे वाले व्यक्ति की छवि सामने आ जाती है। यह छवि सदैव ही आकर्षण का केंद्र रही है। देश जब आजादी के लिए संघर्ष कर रहा था, तब इस छवि के आकर्षण में लाखों-करोड़ों भारतवासी आजादी की लड़ाई में एक हो जाते थे और आज जब गाँधी जी इस दुनिया में नहीं हैं तो उनके कार्य एवं विचार भारतीयों को एक होने के लिए प्रेरित करते हैं। गाँधी जी ने सत्य, अहिंसा और त्याग के ज़रिये अपने व्यक्तित्व में वह आकर्षण और विश्वास पैदा किया जो मानवता में यकीन रखने वाले इंसान के लिए प्रेरणादायी है। गाँधी जी की कथनी और करनी एक थी। वे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अपने प्रभावशाली नेतृत्व एवं आध्यात्मिक शक्ति के ज़रिये भारतीयों की उम्मीदों के केंद्र थे। उन्होंने देश की आजादी के लिए न सिर्फ अथक प्रयास किया बल्कि पूरी दुनिया को एक ऐसा मार्ग दिखाया जिसका आधार था- स्वतंत्रता, समानता, सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह की भावना। गाँधी जी सभी मनुष्यों को समान समझते थे। वे उच्च शिक्षित थे और सम्पन्न परिवार से वास्ता रखते थे लेकिन उनका पहनावा और रहन-सहन देशवासियों से भिन्न नहीं था। वे मनसा-वाचा-कर्मणा एक जैसा रखने में यकीन रखते थे और उन्होंने ऐसा करके दिखाया। मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव उन्हें स्वीकार नहीं था। अंग्रेजी शासन में जहां भी भेदभाव दिखा उसका उन्होंने विरोध किया। गाँधी जी सच्चे अर्थों में अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध के प्रतीक थे और उनके विचार आज भी अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध करने का साहस देते हैं। भारतीय सिनेमा विशेषकर हिंदी सिनेमा ने भारतीयों को समय-समय गाँधी विचारों से रूबरू कराया। गाँधी जी का जिक्र सिनेमा ने उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं के ज़रिये किया। गाँधी जी के जीवन की प्रमुख घटनाओं का जिक्र स्वतंत्रता संघर्ष में उनके द्वारा चलाए गये प्रमुख आंदोलनों का जिक्र किए बिना अधूरा रह जाता है। गाँधी जी के जीते-जी तो हिन्दी सिनेमा ने उनके नज़रिये से दुनिया को रूबरू कराया ही, उनकी शहादत के बाद भी उनके जीवन संघर्ष और दृढ़ विचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित किया। इस शोध आलेख में गाँधी विचारों पर आधारित हिन्दी फिल्मों के तथ्यों की विशेषताओं को रेखांकित किया गया है।

शोध का उद्देश्य-

हिन्दी फिल्मों में गाँधी विचारों की प्रस्तुति और प्रभाव को जानना।

उपकल्पना-

हिन्दी सिनेमा में प्रस्तुत गाँधी विचार समाज की दिशा तय करने की क्षमता रखता है।

* पचपोखरी, रोहतास (सासाराम) बिहार

शोध से संबंधित तथ्य एवं विश्लेषण-

पराधीनता के समय जब भारतीय जनता, गाँधी जी के नेतृत्व में अहिंसावादी आंदोलन में शामिल थी, उसी दौर में भारत में सिनेमा के पर्दे पर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्न दिखाया जाने लगा। यद्यपि अंग्रेजों के राज में यह काम आसान नहीं था और पर्दे पर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ ज़रा सा भी संकेत मिलने पर फिल्म पर प्रतिबंध लगते देर नहीं लगती थी! इसके बावजूद जनता की भावनाओं और देश की आवश्यकता के अनुरूप फिल्मकारों ने प्रत्यक्ष अथवा प्रकारांतर से ऐसे दृश्य प्रस्तुत किए जो देशवासियों को स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करते थे। फिल्मकारों के इस प्रयास में महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व, उनके विचार और उनके कार्य सहायक बने। वर्ष 1921 में कांजीभाई राठौर के नेतृत्व मे 'भक्त विदुर' नाम की फिल्म जनता के सामने आई जिसमें कहानी तो पौराणिक आधार पर भक्त विदुर की दिखाई गयी लेकिन समय की मांग (आजादी के अहिंसक आंदोलन में गाँधी जी के प्रभाव) को देखते हुए भक्त विदुर को गाँधी जी के वेश-भूषा में दिखाया गया। ज़ाहिर तौर पर गाँधी जी के अहिंसक विचार और स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े उनके निर्णय देशवासियों को प्रेरित कर रहे थे। पर्दे पर गाँधी जी से मिलता-जुलता व्यक्तित्व आमजन को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ता था।

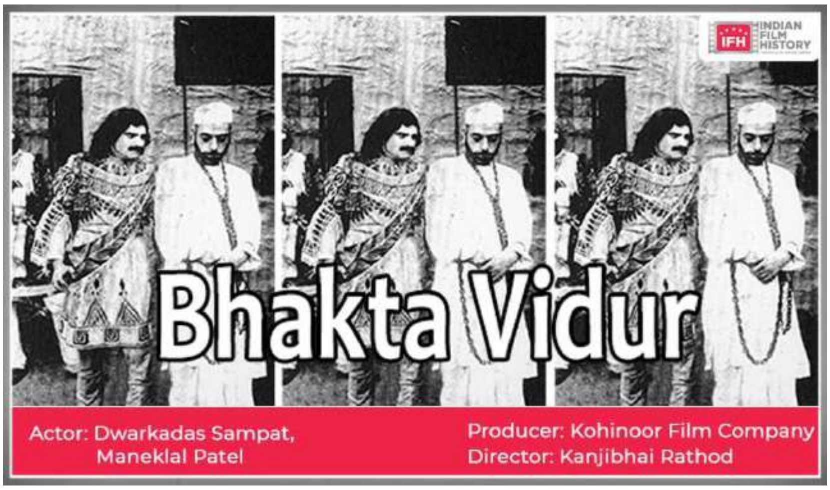

गाँधी जी स्वयं चंपारण सत्याग्रह के दौरान अछूत आंदोलन, साक्षरता और स्त्री शिक्षा की दिशा में प्रेरक कार्य किया था और जनता का उससे जुड़ाव हुआ था। वर्ष 1917 में चंपारण में नील की खेती को लेकर गाँधी जी जो सत्याग्रह आंदोलन किया था उसका असर देशव्यापी था। गाँधी जी के व्यक्तित्व से देश वाकिब हुआ। गाँधी जी ने देश की आजादी के साथ-साथ समाज को कुरितियों से मुक्त कराने का प्रयास भी किया था। समाज में छुआछूत एक ऐसी कुरीति थी, जिसे दूर करने का प्रयास गाँधी जी ने किया। मूक दौर की फिल्म होने के बावजूद भक्त विदुर ने सामाजिक जागरुकता की दिशा में सफल प्रयास किया और गाँधी जी से मिलते-जुलते व्यक्तित्व के दर्शन होने से समाज पर जादुई प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यह फिल्म एक तरफ सामाजिक जागरुकता की ओर एक प्रभावी कदम था, दूसरी ओर आजादी के लिए भी एक महत्वपूर्ण प्रयास था। हालांकि अप्रत्यक्ष रूप से गाँधी जी की झलक और ब्रिटिश हुकूमत को ना पसंद आने वाले दृश्य मिलने पर कुछ समय तक इस फिल्म के प्रदर्शन पर अंग्रेजों द्वारा रोक लगा दी गई थी। गौर करने लायक बात फिल्मकार द्वारा अंग्रेजी हुकूमत के 'दीवान बहादुर' सम्मान पर कटाक्ष किया जाना भी था। महाभारत कालीन चरित्र और घटनाओं को अंग्रेजों के कार्यप्रणाली से जोड़कर फिल्मकार ने अद्भुत साहस दिखाया था। अंग्रेजों की नज़र से यह साहस छिप नहीं पाया और फिल्म पर प्रतिबंध लगा लेकिन फिल्म का नाम बदलकर और जो भी जतन हो सकते थे, उन्हें करके फिल्म का प्रदर्शन हुआ और उस दौर के सर्वाधिक प्रासंगिक चरित्र महात्मा गाँधी सरीखे चरित्र को पर्दे पर दिखाया गया।

गाँधी विचारों को सामने लाने के लिए 'दो आंखें बारह हाथ' एक सशक्त फिल्म है। वी. शांताराम जो कि भारत में सामाजिक जागरुकता की आवश्यकता समझते थे और उनकी अधिकांश फिल्में सामाजिक उद्देश्य को लेकर बनाई गयी थीं। वर्ष 1957 में उन्होंने 'दो आंखें बारह हाथ' नाम की ऐसी फिल्म बनाई जिसमें खूंखार हिंसक अपराधियों को गाँधीवादी विचारों से इंसानियत की राह पर लौटते दिखाया गया है। फिल्म एक जेलर और 6 खूंखार अपराधियों की कहानी है। इस फिल्म में जेलर अहिंसक उपायों द्वारा इन अपराधियों के अंदर मानवता को जागृत करना चाहता है। इसके लिए जेलर अपराधियों को बिना किसी अत्याचार या दंड के सुधारने का प्रयास करता है। इसके लिए वह उन्हें श्रम का कार्य (सब्जी की खेती) देता है। जेलर उनके साथ नरमी से पेश आता है और उनपर विश्वास जाहिर करता है। घटनाक्रम में ये अपराधी अपने पर हमला होने के बावजूद जेलर के विश्वास को टूटने नहीं देते बल्कि खुद मार खाकर लहू-लुहान हो जाते हैं लेकिन बदले में हमला करने वालों पर हाथ नहीं उठाते। फिल्म का गीत "ऐ मालिक तेरे बंदे हम, ऐसे हो हमारे करम" काफी प्रभावशाली है। समाज में अपराधियों में हिंसा का जवाब हिंसा से देने का 'चलन' है। लेकिन इस फिल्म में खतरनाक कैदी हिंसा करने की बजाय गाँधी जी द्वारा प्रेरित अहिंसा का रास्ता अपनाते हुए दिखाए जाते हैं। जेलर द्वारा जेल के कैदियों के लिए बिना दंड दिये सुधार लाने का जो प्रयास है वह अद्भुत और अकल्पनीय है जिसे पर्दे पर विश्वसनीय ढंग से घटित होते हुए दिखाया गया है। यह फिल्म देखकर यह अनुभव किया जा सकता है कि हर इंसान चाहें वह भयानक से भयानक अपराधी ही क्यों ना हो, उसके भीतर इंसानियत छिपी होती है। उचित मार्ग और परिस्थितियां पाकर उनके भीतर छिपी इंसानियत उभर आती है। इस फिल्म को आम फिल्म की तरह मनोरंजन के लिए देखकर विस्मृत कर देने जैसी फिल्म नहीं माना जा सकता बल्कि यह फिल्म हर 'इंसान' में इंसानियत जागृत करने अथवा बनाए रखने के लिए एक प्रेरणा के रुप में देखा जाता है।

वर्ष 1993 में आई 'सरदार' नाम की फिल्म में सरदार वल्लभ भाई पटेल को केंद्र में रखा गया है। इस फिल्म में महात्मा गांधी के विचारों को दर्शकों के सामने बड़ी ही गंभीरता से रखा गया है जो दर्शकों में गाँधी विचार के प्रति आकर्षण पैदा करता है। राजनीति में गाँधी का नाम एक ब्रांड की तरह इस्तेमाल किया जाता है और जनता का विश्वास हासिल करने में इसका भरपूर इस्तेमाल किया जाता है। सिनेमा के लिए भी सत्य और अहिंसा से युक्त गाँधी विचार आज ब्रांड बन चुका है। गाँधी जी विचारों को सिनेमा ने प्रचारित-प्रसारित किया और जनता ने इसे गंभीरता से लिया है। समाज की जटिल से जटिल समस्या को सत्य और अहिंसा के बल पर संवाद के द्वारा हल किया जा सकता है। दुनिया के बड़े-बड़े देश हथियारों का जखीरा जुटा चुके हैं और समय-समय पर एक देश दूसरे देश के खिलाफ हथियारों का इस्तेमाल करता है लेकिन सब को ये पता है कि हिंसा किसी भी समस्या का हल नहीं है बल्कि स्थायी हल अहिंसा और संवाद के ज़रिये ही हासिल किया जा सकता है। भारत में सिनेमा महात्मा गाँधी से प्रेरित सत्य और अहिंसा के महत्व को समय-समय पर रेखांकित करता है, जिसका व्यापक असर जनता पर पड़ता है।

निष्कर्ष-

गाँधी विचार एक 'सामान्य आदर्श' नहीं है बल्कि यह जांचा-परखा, प्रमाणित मार्ग है, जिसमें सामने वाले पर बिना बल प्रयोग किए या बिना खून बहाए, हृदय परिवर्तन करने की क्षमता है। स्वतंत्रता आंदोलन में जिस प्रकार महात्मा गाँधी ने यह कारनामा कर दिखाया, 'दो आंखें बारह हाथ' फिल्म में वी. शांताराम ने भी वह साबित किया। इस फिल्म में खूंखार अपराधियों को अहिंसा का मार्ग बताकर, उनके हृदय को परिवर्तित होते दिखाया गया है। इसी प्रकार भक्त विदुर फिल्म में गाँधी जी की छवि का प्रतीकात्मक प्रयोग करते हुए समाज को जागरुक करने का प्रयास किया गया है। गाँधी विचार हिंदी सिनेमा के लिए एक ऐसा विषय साबित हुआ है जो कि समाज के लिए रचनात्मक है और इस पर आधारित फिल्में समाज में सार्थक बदलाव लाने में सक्षम हैं।

संदर्भ :-

गाँधी, मो. क. (1948). *संपूर्ण गाँधी वाङ्मय.* नई दिल्ली: पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार.

गाँधी, मो. क. (1957). *रचनात्मक कार्यक्रम : उसका रहस्य और स्थान.* अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गाँधी, मो. क. (2007). *सत्य के प्रयोग.* (का. त्रिवेदी, अनु.) अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

दो आंखें बारह हाथ (1957). (फिल्म). निर्देशक- वी. शांताराम. राजकमल काला मंदिर.

भक्त विधुर (1921). (फिल्म). निर्देशक- कांजीभाई राठौर. कोहिनूर फिल्म कम्पनी (पहली फिल्म जिसे भारत में प्रतिबंधित कर दिया गया क्योंकि मुख्य पात्र महात्मा गांधी जैसा था।)